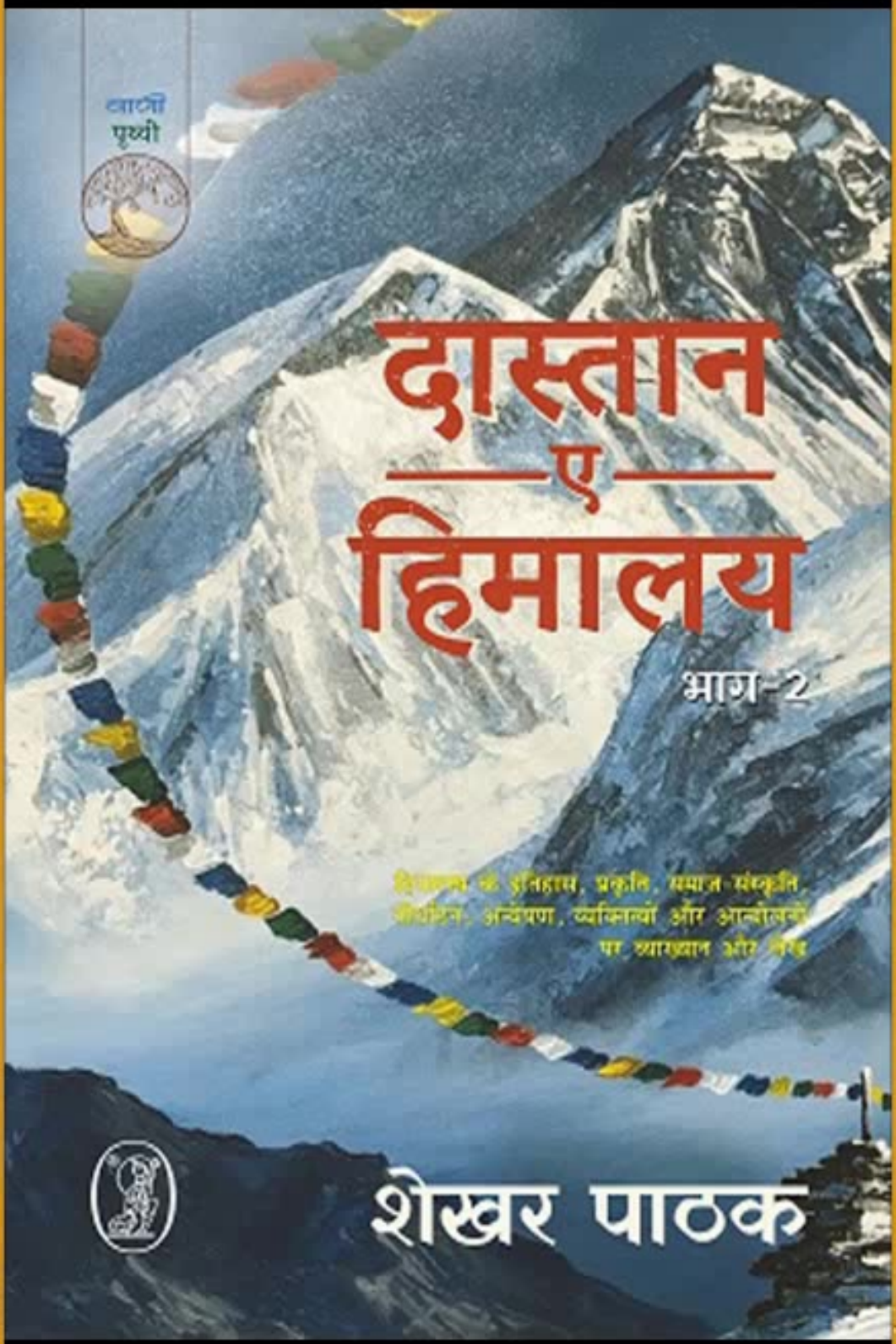
वाणी
पृथ्वी
दास्तान
ए
हिमालय
भाग-2
शेखर पाठक

दास्तान-ए-हिमालय-2

सामाजिक विज्ञान / इतिहास

रज़ा फ़ाउण्डेशन | THE RAZA FOUNDATION

दास्तान —ए— हिमालय

हिमालय के इतिहास, प्रकृति, समाज-संस्कृति, तीर्थाटन, अन्वेषण, व्यक्तित्वों और आन्दोलनों पर व्याख्यान और लेख

भाग-दो

शेखर पाठक

वाणी प्रकाशन

रज़ा पुस्तक माला : सामाजिक विज्ञान | इतिहास
प्रधान सम्पादक : अशोक वाजपेयी | सम्पादक : पीयूष दईया
वाणी प्रकाशन और रज़ा फ़ाउण्डेशन का सह-प्रकाशन

वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002
फ़ोन : +91 11 23273167 फ़ैक्स : +91 11 23275710

शाखाएँ
अशोक राजपथ, पटना 800 004, बिहार
कॉफ़ी हाउस कैम्पस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद 211 001, उत्तर प्रदेश
महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा 442 001, महाराष्ट्र
सुल्तानिया रोड, मोतिया पार्क, भोपाल 462 001, मध्य प्रदेश

www.vaniprakashan.com
marketing@vaniprakashan.in
sales@vaniprakashan.in

DASTAN-E-HIMALAYA-2
Lectures and Articles on Himalayan History, Culture, Nature, Pilgrimage, Exploration, Personalities and Movements
by Shekhar Pathak

ISBN : 978-81-948736-5-5
Social Science/History

© शेखर पाठक

प्रथम संस्करण 2021

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

पिछले दशकों में दिवंगत

विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला
जयानन्द भारती
चन्द्र सिंह गढ़वाली
का. पूरन चन्द्र जोशी, सरला बहन
भक्त दर्शन, निकोलाई रोरिख
बोशी सेन, गुर्टुरुड इमरसन, भैरवदत्त धूलिया
कुशक बकूला, गोविन्दा लामा
शिव प्रसाद डबराल, जीत जरधारी, शूरवीर सिंह पँवार
देवीदत्त पन्त, गुणानन्द पथिक, नागार्जुन
रमाशंकर घिल्डियाल 'पहाड़ी', नित्यानन्द मिश्रा
श्यामादेवी, ब्रजेन्द्रलाल शाह, ठाकुर प्रसाद सिंह
गंगोत्री गर्ब्याल, लेनिन पन्त, घनश्याम शैलानी
यशवन्त सिंह परमार, हे.न. बहुगुणा
शिवानी, शाकम्बरी द्विवेदी, भजन सिंह 'सिंह'
गोविन्द चातक, उमेश डोभाल, गोपेश्वर कोठियाल
मोहन उप्रेती, शैलेश मटियानी, राधाकृष्ण कुकरेती
दुर्गाचरण काला, एलिजाबेथ तथा लॉरी बेकर
गोविन्द सिंह रावत, भवानी भाई, गौरा देवी
चन्द्रलाल साह ठुलघरिया, राजेन्द्र रावत राजू
मनोहर श्याम जोशी, वीरेन्द्रदत्त सकलानी
अबोधबन्धु बहुगुणा, केशव अनुरागी
विद्यासागर नौटियाल, निर्मल पाण्डे, शेरसिंह बिष्ट 'अनपढ़'
बी.डी. पाण्डे, बी.डी. सनवाल, आस्पी डी.
मोडी, शंकर लाल शाह, माधव आशीष
कुँवर प्रसून
प्रताप शिखर
और
गिरीश तिवारी गिर्दा

की याद को
समर्पित है
यह किताब

उनके योगदान को सलाम करते हुए

आमुख

कलाओं में भारतीय आधुनिकता के एक मूर्धन्य सैयद हैदर रज़ा एक अथक और अनोखे चित्रकार तो थे ही उनकी अन्य कलाओं में भी गहरी दिलचस्पी थी। विशेषतः कविता और विचार में। वे हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानते थे और हालाँकि उनका फ्रेंच और अँग्रेज़ी का ज्ञान और उन पर अधिकार गहरा था, वे फ्रांस में साठ वर्ष बिताने के बाद भी, हिन्दी में रमे रहे। यह आकस्मिक नहीं है कि अपने कला-जीवन के उत्तरार्द्ध में उनके सभी चित्रों के शीर्षक हिन्दी में होते थे। वे संसार के श्रेष्ठ चित्रकारों में, 20-21वीं सदियों में, शायद अकेले हैं जिन्होंने अपने सौ से अधिक चित्रों में देवनागरी में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू कविता में पंक्तियाँ अंकित कीं। बरसों तक मैं जब उनके साथ कुछ समय पेरिस में बिताने जाता था तो उनके इसरार पर अपने साथ नवप्रकाशित हिन्दी कविता की पुस्तकें ले जाता था : उनके पुस्तक-संग्रह में, जो अब दिल्ली स्थित रज़ा अभिलेखागार का एक हिस्सा है, हिन्दी कविता का एक बड़ा संग्रह शामिल था।

रज़ा की एक चिन्ता यह भी थी कि हिन्दी में कई विषयों में अच्छी पुस्तकों की कमी है। विशेषतः कलाओं और विचार आदि को लेकर। वे चाहते थे कि हमें कुछ पहल करनी चाहिए। 2016 में साढ़े चौरानवे वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु के बाद रज़ा फ़ाउण्डेशन ने उनकी इच्छा का सम्मान करते हुए हिन्दी में कुछ नये क़िस्म की पुस्तकें प्रकाशित करने की पहल रज़ा पुस्तक माला के रूप में की है, जिनमें कुछ अप्राप्य पूर्व प्रकाशित पुस्तकों का पुनःप्रकाशन भी शामिल है। उनमें गाँधी, संस्कृति-चिन्तन, संवाद, भारतीय भाषाओं से विशेषतः कला-चिन्तन के हिन्दी अनुवाद, कविता आदि की पुस्तकें शामिल की जा रही हैं।

हिन्दी में हिमालय-गाथा कई लेखकों ने लिखी है पर शेखर पाठक ने जो दास्तान लिखी है वह अपने वितान में अनोखी है। उसमें हिमालय को लेकर पौराणिक-ऐतिहासिक स्मृतियों, उसके अंचल में सक्रिय सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों, उसके पर्यावरण को लगातार बढ़ रहे ख़तरों को लेकर विश्लेषणों और चेतावनियों, उसके क्षेत्र में मुखर-सचेष्ट व्यक्तियों, अपने निजी निपट स्थानीय अनुभवों, यायावर प्रसंगों को जतन, कल्पनाशीलता और

संवेदनशीलता से गूँथा गया है। हिमालय एक अर्थ में असीम और अदम्य है। पर शेखर पाठक ने उसकी रंगतों-विस्मयों-भयों आदि को बहुत रोचक ढंग से शब्दबद्ध किया है। हिन्दी में ऐसी विरल सामग्री को एकत्र कर हिमालय को एक बार फिर हिन्दी चेतना का हिस्सा बनाने के इस बहुपक्षी प्रयत्न को रज़ा पुस्तक माला के अन्तर्गत प्रस्तुत करने में रज़ा फशउण्डेशन प्रसन्नता अनुभव कर रहा है।

—अशोक वाजपेयी

इस नदी की धार से ठण्डी हवा आती तो है!

हिमालय और अपने समय को समझने की कोशिश में लगी और अपने समझे को हमें समझाती रही अनेक प्रतिभाएँ पिछले कुछ दशकों (जो पिछली सदी में भी जाते हैं) में हमारे बीच से चली गयी हैं। उनसे बहुत कुछ सीखा था। दरअसल इन सभी को मैं अपना शिक्षक मानता हूँ। हिमालयी समाजों को समझने तथा उन्हें चमक और चेहरा देने में इनका अपनी तरह का योग रहा। इनमें से **विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, जयानन्द भारती, चन्द्र सिंह गढ़वाली, पूरन चन्द्र जोशी, भक्त दर्शन, भैरवदत्त धूलिया, यशवन्त सिंह परमार, गोविन्द सिंह रावत, गौरादेवी, हे.न. बहुगुणा** आदि संग्रामी, राजनेता और आन्दोलनकारी थे तो **कुशक बकूला, सरला बहन, श्यामादेवी, वीरेन्द्रदत्त सकलानी, गौरादेवी, कुँवर प्रसून, प्रताप शिखर,** आदि समाजसेवी थे और आन्दोलनकारी भी।

गोविन्दा लामा, माधव आशीष अपनी विशेषज्ञता के साथ धर्म तथा अध्यात्म से जुड़े थे। **शिव प्रसाद डबराल, भजन सिंह 'सिंह'** तथा **शाकम्बरी द्विवेदी** इतिहासकार; **बोशी सेन** और **देवीदत्त पन्त** वैज्ञानिक; **गंगोत्री गर्ब्याल** और **गुर्टुरुड इमरसन** शिक्षाविद; **गोविन्द चातक** लोक विशेषज्ञ; **शंकर लाल शाह** अर्थशास्त्री थे। **आस्पी डी. मोडी** और **बी.डी. पाण्डे** प्रशासक थे और हिमालय की कुछ संस्थाओं को जन्म और जीवन देने वाले रहे तो **मोडी** और **बी.डी. सनवाल** प्रशासक के साथ लेखक भी थे। **निकोलाई रोरिख** चित्रकार थे और मानवतावादी भी। **चन्द्रलाल साह ठुलघरिया** तरह-तरह के प्रयोग करने वाले, पर्वतारोही और शिक्षाविद। **लॉरी बेकर** भवनों के लोक निर्माता थे तो **एलिजाबेथ** समर्पित डॉक्टर।

रमाशंकर घिल्डियाल 'पहाड़ी', शिवानी, मनोहर श्याम जोशी, विद्यासागर नौटियाल, ठाकुर प्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी कहानीकारों के रूप में विख्यात हुए तो **ब्रजेन्द्रलाल शाह, केशव अनुरागी, लेनिन पन्त, मोहन उप्रेती, जीत जरधारी, निर्मल पाण्डे** को विभिन्न कला विधाओं की ऊँचाइयों तक जाता हुआ देखा गया। **शेरसिंह बिष्ट 'अनपढ़'** तथा **अबोधबन्धु बहुगुणा** क्रमशः कुमाउँनी

तथा गढ़वाली कविता के बड़े हस्ताक्षर थे। **उमेश डोभाल, गोपेश्वर कोठियाल, दुर्गाचरण काला, राधाकृष्ण कुकरेती** ने पत्रकारिता में गहरा योगदान दिया तो **गुणानन्द पथिक, नागार्जुन, घनश्याम सैलानी, राजेन्द्र रावत राजू** और **गिरीश तिवारी गिर्दा** ने साहित्य-संस्कृति और जनसंघर्षों को प्रवाह दिया।

दरअसल इनमें से ज्यादातर प्रतिभाएँ बहुमुखी थीं। **सरला बहन** स्वतन्त्रता सेनानी, पर्यावरणविद और आन्दोलनकारी रहीं। **भैरवदत्त धूलिया, कुँवर प्रसून** आदि प्रखर सम्पादक और पत्रकार भी रहे। **गोविन्दा, रोरिख** और **मोडी** ने हिमालय को और गहराई से समझने में योग दिया तो **आशीष** ने कितने ही विषयों पर गहरे निबन्ध लिखे। **गोविन्द चातक** नाटककार भी थे। **दुर्गाचरण** ने जिम कार्बेट और पहाड़ी विल्सन की पठनीय जीवनियाँ लिखी, **राधाकृष्ण** ने बेहतरीन कहानियाँ लिखी तो **गिर्दा** ने कविता, नाटक, संगीत, रंगमंच, फ़िल्म और जनान्दोलनों को जोड़ दिया। **केशव अनुरागी** हिमालय की शायद अन्तिम लोक सांगीतिक टिमटिमाहटों में से एक थे। **विद्यासागर नौटियाल** जन प्रतिनिधि से पहले टिहरी रियासत के नन्हे संग्रामी थे। ज्यादातर कहानीकार प्रतिष्ठित सम्पादक भी रहे। **नागार्जुन** के साहित्य से बाहर भी अनेक आयाम थे।

इनमें से अधिकांश से मेरा सामना और संवाद हुआ। कुछ तो मेरे घनिष्ठ दोस्त थे। इनसे मैंने अपनी क्षमता भर सीखा भी। पर इनका गहन कृतित्व और असली सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान आगामी समय में और अच्छी तरह समझ में आयेगा। चार और हस्तियाँ मुझे लगातार याद आती हैं और रोशनी दे जाती हैं। ये हैं **शिवराम कारंत, मक़बूल फ़िदा हुसेन, महाश्वेता देवी** और **बिस्मिल्ला ख़ान।**

इन सबको यह किताब समर्पित है।

दास्तान-ए-हिमालय का दूसरा खण्ड पूरी तरह उत्तराखण्ड पर केन्द्रित है।

❖❖❖

ये लेख या व्याख्यान मेरे **कुमाऊँ विश्वविद्यालय** के कार्यकाल या **भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,** शिमला तथा **नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय** के **सेण्टर फार काण्टेम्परेरी स्टडीज़** की फैलोशिप के दौर में लिखे/बोले गये थे। मैं **कुमाऊँ विश्वविद्यालय; भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान** तथा **नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय** के साथियों को उनकी मित्रता और सहयोग के लिए तथा

चण्डी प्रसाद भट्ट, कृष्णनाथ, गिर्दा, पुष्पेश दा, गोविन्द चातक, रामचन्द्र गुहा, आर.एस. टोलिया, रामसिंह, प्रयाग जोशी, मदन भट्ट, डी.पी. अग्रवाल, वाचस्पति, ताराचन्द्र त्रिपाठी, उमा भट्ट, ललित पन्त और **रघुवीर चन्द** को प्रेरणा, परामर्श और सहयोग के लिए याद करता हूँ।

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता; **सर्वे आव इण्डिया,** देहरादून; **नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार,** नयी दिल्ली; **प्रान्तीय** तथा **क्षेत्रीय अभिलेखागार,** लखनऊ तथा नैनीताल; **ब्रिटिश लाइब्रेरी,** लन्दन; **अल्पाइन अकादमी,** म्यूनिख; **कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा संग्रहालय,** कैम्ब्रिज तथा **स्वेन हेडिन फ़ाउण्डेशन,** स्टाकहोम आदि का भी शुक्रिया अदा करता हूँ, जहाँ हिमालय सम्बन्धी कुछ-न-कुछ नयी सामग्री मिली।

किताब को सुन्दर रूप देने में **कमल जोशी, अनूप साह, प्रदीप पाण्डे, देव मुखर्जी, भवान सिंह, गौतम भट्टाचार्य, पी.सी. तिवारी, पुश्किन फर्त्याल, गौरी सिंह** और **उमा भट्ट** के फ़ोटो तथा **बी.आर. पन्त, राजीव रावत, नवीन जुयाल** और **भूपेन मेहता** के नक्शों का अलग योगदान है। किताब में वयोवृद्ध चित्रकार और पुराविद् **यशोधर मठपाल,** दिवंगत चित्रकार **सुरेन्द्र जोशी** तथा दिवंगत हरफनमौला **कमल जोशी (कलम बुग्याली)** के तीस साल पुराने रेखांकन भी प्रयुक्त हुए हैं। सबका आभार। सभी फ़ोटो में फ़ोटोकार के नाम दिये हैं। शेष सभी फ़ोटो समय-समय पर मैंने लिए हैं।

वाणी प्रकाशन के **अरुण माहेश्वरी, अदिति माहेश्वरी** और **उनकी सम्पादकीय टीम** के प्रति भी आभार कि उन्होंने सतत तत्परता दिखायी और 'दास्तान-ए-हिमालय' को इतनी आत्मीयता से प्रकाशित किया।

❖❖❖

अन्त में मैं पहले **पीयूष दईया** का, फिर बरास्ते उनके **अशोक वाजपेयी** के प्रति आभार जताता हूँ ताकि वे दोनों मिलकर हमारे समय के दिग्गज चित्रकार, प्यारे इन्सान और हमारे दिवंगत पूर्वज **हैदर रज़ा** साहिब के नाम हमारा शुक्रिया और सलाम ज़ाहिर कर सकें। उनसे साफ़-साफ़ यह कह सकें कि हिमालय को समझने और समझाने के निमित्त लिखे गये या बोले गये ये शब्द-सिलसिले **रज़ा फ़ाउण्डेशन** की मेहरबानी से इस जालिम ज़माने के सामने इस रूप में आ सके हैं।

शेखर पाठक

ग्राम : पठक्यूड़ा (नाकुड़)
पोस्ट : गंगोलीहाट
ज़िला : पिथौरागढ़
वाया : अलमोड़ा (उत्तराखण्ड)

16 जनवरी 2017

आभार

इन लेखों या इनके कतिपय रूपों को पूर्व में प्रकाशित करने के लिए

पहाड़, नैनीताल; **उत्तर प्रदेश,** लखनऊ; **इतिहास दृष्टि,** गोरखपुर; **पहल,** जबलपुर; **आधुनिक भारतीय शिक्षा,** (एनसीईआरटी), नयी दिल्ली; **इतिहास बोध,** इलाहाबाद; **इतिहास,** भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नयी दिल्ली; **गोविन्द बल्लभ पन्त विश्वविद्यालय,** पंतनगर; **नैनीताल समाचार,** नैनीताल; **दिनमान,** नयी दिल्ली; **स्वतन्त्र भारत साहित्य सुमन,** लखनऊ; **उत्तराखण्ड इतिहास तथा संस्कृति परिषद्,** श्रीनगर; **साहित्य अकादेमी,** नयी दिल्ली और **रूपायन संस्थान,** बोरुंदा; **उत्तर प्रदेश इतिहास काँग्रेस; उत्तराखण्ड विज्ञान तथा तकनीकी परिषद् (यूकोस्ट)** तथा **गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालयी पर्यावरण और विकास संस्थान** का;

इन प्रकाशनों के सम्पादक/भाषणों के आमन्त्रक **रघुवीर सहाय, ठाकुर प्रसाद सिंह, राजेश शर्मा, पहाड़ सम्पादक मण्डल, सैयद रज़ा रिज़वी, लाल बहादुर वर्मा, विवेकानन्द झा, अशोकजी, नवीन जोशी, बी.एस. बिष्ट, कृष्णकुमार, राजरानी, अनिल पाण्डे, महेश रंगराजन, ज्ञानरंजन, राजकुमार केसवानी, अजमल कमाल, राजीव लोचन साह, विजयदान देथा 'बिज्जी', बृजमोहन खण्डूड़ी, राजेन्द्र डोभाल,पीताम्बर घ्यानी** और **रनबीर रावल** का;

इन लेखों को खोज निकालने के लिए **किरण त्रिपाठी, हीरा भाकूनी, गिरिजा पाण्डे, नवीन जोशी, वीरेन्द्रपाल** आदि का और किताब को यह स्वरूप प्रदान करने के लिए **पीयूष दईया, अनिल कार्की** तथा **हरीश पाठक** का आभार।

सूचना

ये सभी आलेख अपने पुराने रूप में ही हैं। कहीं-कहीं पर विभिन्न लेखों के दोहराव को कम किया गया है। हर लेख के अन्त में उसकी प्रकाशन कहानी बता दी गयी है। एक जिल्द (दो खण्डों) के भीतर इन लेखों के आने से पाठकों को अनेक जगह दोहराव लग सकता है पर इसे उसी लेख के प्रसंग में देखने/

पढ़ने की कृपा करें। कृपया यह बात मन में अवश्य रखें कि यह 40 साल के अन्तराल में दिये गये भाषणों और लिखे गये लेखों का संग्रह है, हिमालय के किसी एक आयाम पर लिखी गयी मुक़म्मल किताब नहीं। सन्दर्भ (2-3 को छोड़कर) सभी लेखों में दिये हैं। ये सिर्फ़ सन्दर्भ न होकर अनेक पीढ़ियों की अनेकानेक प्रतिभाओं को इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में मेरी ओर से सलाम करने की कोशिश है। लेख कब लिखा गया या व्याख्यान कब दिया गया ये ध्यान प्रवर पाठक रखेंगे ही।

अनुक्रम

आमुख : अशोक वाजपेयी

इस नदी की धार से ठण्डी हवा आती तो है!

आभार

1. उत्तराखण्ड के इतिहास का विहंगावलोकन

एक हिमालयी क्षेत्र के समग्र इतिहास का ताना-बाना

2. 'हिमालय के हिन्दुओं' की जाँच-पड़ताल

बैरीमन के बरअक्श हिमालयी समाजों के कुछ पक्षों पर नज़र

3. उत्तराखण्ड में सामाजिक आन्दोलनों की रूपरेखा

बीसवीं सदी की जागृति और प्रतिरोधों की प्रारम्भिक पड़ताल

4. उत्तराखण्ड में बेगार उन्मूलन आन्दोलन

उत्तराखण्ड के पहले सामाजिक-राजनीतिक प्रतिरोध का मिज़ाज

5. 'ढण्डकों' से प्रजा मण्डल तक

टिहरी रियासत में जन प्रतिरोधों की दास्तान

6. श्याम प्रसाद लुहार की बारात

9 मई 1980 के कफ़ल्टा काण्ड की ताज़ा रपट

7. नशा एक षड्यन्त्र है

'नशा नहीं रोज़गार दो आन्दोलन' की पृष्ठभूमि और पड़ताल

8. सिर्फ़ 1/10 का सवाल नहीं

उत्तराखण्ड में पर्यावरण और खेती का रिश्ता

9. आपदा कथा

उत्तराखण्ड में प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदा के 210 साल

1

उत्तराखण्ड के इतिहास का विहंगावलोकन
एक हिमालयी क्षेत्र के समग्र इतिहास का ताना-बाना

हिमालय अनेक राष्ट्रों तथा क्षेत्रों में फैली हुई एक प्राकृतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत है। इस पर्वतमाला के मध्य में उत्तराखण्ड[1] स्थित है। 'देवताओं तथा ऋषियों की भूमि' कहा जाने वाला उत्तराखण्ड मूलतः मनुष्यों तथा उनके समुदायों तथा समाजों का क्षेत्र है। देवता सिर्फ़ वहीं हो सकते हैं, जहाँ मनुष्य होता है। विभिन्न लघु संस्कृतियों तथा धर्मों की प्रभावस्थली यह क्षेत्र बनता रहा है। तीर्थयात्रा, पर्यटन तथा पर्वतारोहण की दृष्टि से ही नहीं, जैविक और सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता की दृष्टि से भी उत्तराखण्ड महत्त्वपूर्ण है।

हिमालय पर्वत की मिथकों और प्राचीन साहित्य में पर्याप्त चर्चा है। प्राकृतिक सौन्दर्य, इससे जनित 'पवित्रता', भौगोलिक दुरूहता और इसके साथ जुड़ी मिथकों की बहुलता ने यहाँ सैकड़ों तीर्थ स्थानों को जन्म दिया।[2] विभिन्न मानव समाज और संस्कृतियाँ यहाँ एक-दूसरे में आत्मसात् होती रहीं और उनके अनेक हिस्से अलग भी बने रहे। इसीलिए हिमालय जैसा विविधता भरा कोई और प्राकृतिक या मानवीय क्षेत्र इस पृथ्वी में नहीं है। यही बात उत्तराखण्ड के लिए कही जा सकती है। सामाजिक विकास के अलग-अलग चरण—जनजातीय, जातीय और वर्गीय समाज—यहाँ स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पहाड़ों में पशुचारण, घाटियों में खेती तथा हिमालय के आर- पार व्यापार के विकास के कारण एक भिन्न प्रकार का सामाजिक-आर्थिक तन्त्र यहाँ विकसित हुआ।

आज उत्तराखण्ड के इतिहास को निम्न कारणों से ज़्यादा समग्रता में जानने का औचित्य है :

- क्योंकि यह चारों ओर से आवागमनरत मानव समूहों और उनके माध्यम से विभिन्न लघु समाजों तथा संस्कृतियों का मिलन क्षेत्र (मेल्टिंग पॉट) है,

- फ़िलहाल तीन राजनीतिक व्यवस्थाओं (भारतीय जनतान्त्रिक, चीनी साम्यवादी तथा राजारहित नये जनतन्त्र की ओर बढ़ते नेपाल) का सन्धि स्थल है,
- उत्तरी भारत की महत्त्वपूर्ण नदियों का उद्गम—जलागम, विभिन्न जीव प्रजातियों तथा वन-वनस्पतियों का क्षेत्र है,
- यह प्राकृतिक-जैविक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता का क्षेत्र है और तीर्थयात्रा, पर्वतारोहण का गन्तव्य भी। तथा
- निरन्तर बढ़ते भू-राजनीतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों के महत्त्व के साथ नये राज्य के रूप में भी इसके जन इतिहास को जानने की ज़रूरत है।

मिथकों से भरे हिमालयी इतिहास को एक स्वतन्त्र तथा वैज्ञानिक गरिमा देने का प्रयास ज़रूरी है। इसे पहले एक विस्तृत अध्याय में कहा जा चुका है। उत्तराखण्ड के वस्तुनिष्ठ और विज्ञानसम्मत इतिहास को लिखने का प्रयास होना चाहिए ताकि उत्तराखण्ड का इतिहास-लेखन राष्ट्रीय इतिहास के परिशिष्ट से निकलकर एक स्वायत्त तथा समग्र अनुशासन के रूप में विकसित हो सके।

अन्यत्र विस्तार से लिखा गया है कि हिमालय के अनेक राष्ट्रों तथा क्षेत्रों में फैले होने के कारण इसके विभिन्न राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय इतिहास लिखे जाने का औचित्य है ताकि उसे उस राष्ट्र या क्षेत्र के इतिहास के रूप में देखा जा सके और हिमालय के समग्र इतिहास के हिस्से के रूप में भी। इससे हिमालय को 'केन्द्र' (सेण्टर) तथा 'किनारे' (पेरीफेरी), दोनों हैसियतों से देखा और समझा जा सकेगा। यह दुनिया की सर्वोच्च तथा अत्यन्त विविधता भरी पर्वतमाला को उसके विविध क्षेत्रों/अंचलों के माध्यम से कुछ ज़्यादा गहराई में जानने के प्रयास की शुरुआत भी होगी। ऐसा एक प्रारम्भिक प्रयास मैंने अन्यत्र किया है।[3]

आज मैं इस विराट् हिमालय की नहीं, इसके मध्यवर्ती हिस्से में स्थित उत्तराखण्ड की चर्चा करना चाहता हूँ। यह चर्चा लम्बे समय से चली भी आ रही है। आचार्य शिव प्रसाद डबराल की स्मृति में दिये जा रहे इस पहले व्याख्यान में शायद कुछ कठिन ज़िम्मेदारी को मैं उत्तराखण्ड के व्यापक जन इतिहास के ताने-बाने को प्रस्तुत कर निभाने का प्रयास कर रहा हूँ। यह व्याख्यान आचार्य डबराल को हमारी पीढ़ी के अन्तरंग प्रणाम की तरह लिया जाना चाहिए।[4] हमारी पीढ़ी की उत्तराखण्ड के भूगोल तथा इतिहास की समझ बनाने में आचार्य डबराल का असाधारण योगदान रहा है। उन्हें याद करते हुए कहना चाहता हूँ कि यहाँ उपस्थित सभी के सुपरिचित उत्तराखण्ड को आज हर विषयगत अनुशासन में ज़्यादा गहराई और ज़्यादा समग्रता में जानने की ज़रूरत है। यह अतीत को जानने के साथ वर्तमान को समझने के लिए अपरिहार्य है और भविष्य की ओर बढ़ने के लिए भी। हमारी पीढ़ी जो नहीं कर

सकी, वह नये पुरातत्त्वविदों, इतिहासकारों तथा समाजविज्ञानियों को करना है। दरअसल, उन्हीं के लिए यह व्याख्यान है।

जटिल भूगर्भ और गतिशील भूगोल

समय और स्थान इतिहास के दो आधार तत्त्व हैं। स्थान का सम्बन्ध भूगोल से है। किसी भी इतिहास के लिए भूगोल एक अपरिहार्यता है। एक अत्यन्त जटिल भूगर्भ और गतिशील भूगोल[5] के रूप में अफ़ग़ानिस्तान से उत्तरी म्याँमार (बर्मा) तक विस्तृत हिमालय के मध्यवर्ती क्षेत्र में उत्तराखण्ड स्थित है। यह गंगा का हिमालयी जलागम है और उत्तर में पश्चिमी तिब्बत के पठार, पूर्व में नेपाल, पश्चिम में हिमाचल के पहाड़ों और दक्षिण में उत्तर प्रदेश के गंगा-यमुनी मैदान से घिरा है। टैथिस सागर से सबसे ऊँचे पर्वत में रूपान्तरण की कहानी करोड़ों साल में फैला प्राकृतिक इतिहास है। ऊँचाई, शिखर, ग्लेशियर, ताल, नदी, गर्म पानी के स्त्रोत (बर्फ़ तथा पानी), मिट्टी-चट्टानें, जंगल, चरागाह, विविध वन्य जीव आदि इसके दिखाई देने वाले भौगोलिक आधार हैं तो तमाम भ्रंश तथा दरारें, धातु तथा खनिज इसके भूगर्भ से सम्बन्ध रखते हैं। हिमालय की इस प्रकृति ने यहाँ के मनुष्यों और उनकी जीवन पद्धतियों के मिज़ाज को निर्मित किया है।

1.1 लखु उडियार (अल्मोड़ा) के शैलचित्र

उत्तराखण्ड के पूर्व में काली नदी भारत-नेपाल सीमा बनाती है और पश्चिम में पब्बर-टौन्स नदियाँ तथा पास के पहाड़ इसे हिमाचल प्रदेश से अलग करते हैं। दक्षिणी छोर गंगा-यमुना के मैदान के धुर उत्तरी हिस्से से जुड़ा है। इसके उत्तर में स्थित पट्टी तराई कहलाती है। तराई के उत्तर में भाबर तथा दून क्षेत्र

आता है, जो पूर्व से पश्चिम की ओर क्रमशः कोटादून (बौर-कोसी के बीच), पातलीदून (कोसी-रामगंगा), कोटरीदून (पश्चिमी रामगंगा-गंगा) तथा देहरादून (गंगा-यमुना के बीच और सबसे बड़ा) कहलाता है। तराई तथा भाबर की 8 से 25 किमी. चौड़ी पट्टी के बाद शिवालिक (विभिन्न दून घाटियाँ), जो यहाँ पीर पंजाल की तरह अधिक ऊँचे नहीं जाते हैं, और बाह्य हिमालय के मिलन के साथ हिमालय पर्वतमालाएँ धीरे-धीरे उठती हैं और महाहिमालय में 7,817 मीटर (नन्दादेवी का मुख्य शिखर) तक चली जाती हैं।

इन ऊँचाइयों की उत्तरी ढलान को ट्रान्स हिमालय या टैथिस हिमालय या जन्सकर कहा जाता है। यहीं उत्तराखण्ड की तिब्बत से अन्तरराष्ट्रीय सीमा लगी है। इस क्षेत्र में उत्तराखण्ड की अनेक घाटियों में स्थित अन्तिम बसासतें, नदियों के जन्मस्थल तथा भारत और तिब्बत के बीच के अनेक दर्रे मौजूद हैं। इस उत्तरी ढलान में भारत-तिब्बत सीमा सतलज तथा करनाली के जल ग्रहण क्षेत्रों को गंगा के उत्तराखण्डी जलग्रहण क्षेत्रों से अलग करती है। उत्तराखण्ड की पारम्परिक शब्दावली में भोट (भोटान्तिक यानी तिब्बती सीमान्त का क्षेत्र), पहाड़ (मध्यवर्ती पर्वतीय क्षेत्र) तथा माल (तराई-भाबर तथा दून क्षेत्र) सम्बोधनों का प्रयोग होता रहा है। इससे न सिर्फ़ भौगोलिक बल्कि पर्यावरणीय क्षेत्रों का भी भान होता है।

उत्तराखण्ड में हिमालय की तीनों शृंखलाएँ—लघु, उच्च तथा ट्रांस या टैथिस हिमालय—मौजूद हैं। हालाँकि तराई-भाबर की पट्टी भी सम्पूर्ण हिमालय की तलहटी में एक भिन्न प्राकृतिक संरचना की तरह मौजूद है। नन्दादेवी का प्राकृतिक अभयारण्य, दून तथा सोर घाटी जैसे क्षेत्र उत्तराखण्ड के भूगोल की अतिरिक्त विशेषता हैं। भाबर तथा दून से उत्तर में तथा लघु हिमालय के दक्षिण में निचली और बाहरी पहाड़ियाँ (गागर रेंज से सुरकण्डा रेंज-नागटिब्बा तक) पहली शृंखला का; असुरचुला, शैलपर्वत, शिखर, पिननाथ-पाण्डुखोली, चन्द्रबदनी आदि दूसरी शृंखला का; पंचचूली, राजरम्भा, नन्दाकोट, नन्दादेवी, त्रिशूल, चौखम्भा, केदारडोम, शिवलिंग, बन्दरपूछ तथा स्वर्गारोहिणी आदि तीसरी बर्फ़ीलीं शृंखला का (इसकी दक्षिणी ढलान में सीमा बुग्याल, सहस्त्रताल, पँवालीकाठा, तुंगनाथ, कुँवारीखाल, छिपलाकोट जैसे पर्वत विस्तार हैं) तथा इनके पार तिब्बत से जुड़ा क्षेत्र, जिसमें कॉमेट (7,756 मी.) जैसे कुछ शिखर तथा लीपूलेख, कुंग्रीबिंग्री, दारमाधूरा, लावे धूरा, नीती, माणा, बंगनाल, पलमसुम्दा तथा नेलंग जैसे तिब्बत में खुलने वाले दर्रे हैं, चौथी शृंखला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस क्षेत्र को भी नदियों के प्रवाह ने आड़े-तिरछे काटा है। उत्तराखण्ड की समस्त नदियाँ गंगा के बृहत् जल प्रवाह तन्त्र का हिस्सा हैं बल्कि यों कहा

जाये कि इस तन्त्र का पश्चिमी सीमान्त रुपिन तथा लमखागा दर्रे और उससे उत्तर को फैली धार तक है, जो टौन्स (यमुना) और बास्पा (सतलज) की जल विभाजक रेखा है। उत्तर में भारत-तिब्बत सीमा लगभग जल विभाजक रेखा भी है। सतलज पश्चिम-दक्षिण को बहती है। करनाली दक्षिण-पूर्व को बहकर नेपाल में प्रवेश करती है। पूर्व में काली की नेपाल की ओर से आने वाली सहायक नदियों—टिंकर तथा चमलिया आदि—तक यह जलग्रहण क्षेत्र फैला है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि उत्तराखण्ड की किसी नदी का जन्म तिब्बत के पठार में नहीं होता है और यहाँ का समस्त पानी बंगाल की खाड़ी में जाता है।

1.2 ब्रिटिश कुमाऊँ और टिहरी रियासत

उत्तराखण्ड में गंगा नदी के तीन उप-जल-प्रवाह तन्त्र स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पूर्व में **काली** (कुटी, टिंकर, धौली, गोरी, चमलिया, सरयू-पूर्वी रामगंगा तथा लधिया), मध्य में **भागीरथी-अलकनन्दा** (जाड गंगा, जालन्धरी गाड़, असीगंगा, जलकूर, भिलंगना और पश्चिमी धौली, नन्दाकिनी, पिंडर, मन्दाकिनी, तथा नयार) और पश्चिम में **यमुना-टौंस** (हनुमानगाड़, सुपिन, रुपिन, पब्बर, कमल तथा अगलाड़)। इनमें सरयू, गोमती, चमलिया, लधिया, जलकूर, असीगंगा, नयार, पब्बर, कमल तथा अगलाड़ नदियाँ ग़ैर-बफ़र्नी हैं।

उत्तराखण्ड के मध्य-दक्षिणी हिस्से, जो लोहाघाट-चम्पावत से कौसानी-पाण्डुखोली और दूधातोली-पौड़ी तक फैला विस्तृत क्षेत्र है, से अनेक ग़ैर-बफ़र्नी नदियाँ स्वतन्त्र रूप से बहकर गंगा में मिलती हैं। इनमें नयार, रिस्पना,

खोह, पश्चिमी रामगंगा, कोसी, बौर, दाबका, गौला तथा कलसा/कैलास आदि प्रमुख हैं। कुछ भूगोलविद्धों की यह बात अब पुरानी पड़ गयी है कि उत्तराखण्ड का चौथा जल प्रवाह तन्त्र रामगंगा (पश्चिमी) है। दरअसल, बाहरी हिमालय की सभी नदियाँ स्वतन्त्र रुप से गंगा में विभिन्न स्थानों पर मिलती हैं। अतः यह अनेक ग़ैर-बफ़ानीं नदियों का क्षेत्र है।

छोटी नदियों के किनारे ही उत्तराखण्ड में खेती के बड़े क्षेत्र हैं। जैसे कमलसिराईं-रामासिराईं, सतपुली-नयार, चौखुटिया-स्याल्दे-भिकियासैण, टोटाशिलिंग-सोमेश्वर-हवालबाग-बैतालघाट, गरुड़-बैजनाथ-गागरीगोल, कपकोट-बागेश्वर-सेराघाट-तल्लासेरा; रीठासाहिब-कर्णकरायत-लोहाघाट या सोर-वड्डा-झूलाघाट (पिथौरागढ़) जैसी घाटियाँ। बड़ी और बर्फ़ानी नदियों के किनारे स्थित नौगाँव-बड़कोट, उत्तरकाशी-डुण्डा-टिहरी; घूत्तू-घणसाली-सिल्यारा; गोचर-श्रीनगर-चौरास-मलेथा; नाचनी-थल-मवानी-आवलाघाट; धारचुला-बलुवाकोट-जौलजीबी; बरम-छोरी बगड़-जौलजीबी आदि जैसे सम्पन्न कृषि क्षेत्र हैं।

1.3 ललितशूर देव का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्र

डाकपत्थर, रुड़की-देहरादून, हरिद्वार-ऋषिकेश, कोटद्वार, कालागढ़, काशीपुर, रामनगर, रुद्रपुर-हल्द्वानी तथा खटीमा-टनकपुर उत्तराखण्ड के दक्षिणी प्रवेश द्वार हैं। इस क्षेत्र में उत्तराखण्ड की अधिकतम सघन जनसंख्या का वास है। लघु हिमालय की औसत ऊँचाई दो हज़ार मीटर तक है तथा इसके कुछ क्षेत्र-शिखर तीन हज़ार मीटर तक भी पहुँचते हैं। इसी क्षेत्र में उत्तराखण्ड की सर्वाधिक जनसंख्या निवास करती है। अधिसंख्य गाँवों तथा कृषि योग्य भूमि के साथ यहीं तमाम नगर-क़स्बे यानी विभिन्न ज़िला, तहसील तथा ब्लॉक मुख्यालय हैं।

लघु हिमालय के बाद उत्तर में 40 किमी. की औसत चौड़ाई में महाहिमालय के शिखर फैले हैं, जिनकी औसत ऊँचाई 6,500 मीटर से

अधिक है। इस क्षेत्र में भारत के सर्वोच्च शिखरों में एक नन्दादेवी के अतिरिक्त 12 ऐसे शिखर हैं, जिनकी औसत ऊँचाई 7 हज़ार मीटर से अधिक है तथा 70 शिखर ऐसे हैं जिनकी ऊँचाई 6 हज़ार मीटर से अधिक है। कुछ प्रख्यात हिमानियाँ (ग्लेशियर या ग़ल)—मिलम, रालम, कफनी, पिण्डारी, सुन्दरढूँगा, अलकनन्दा बाँक, खतलिंग, गोमुख, बन्दरपूछ आदि—इसी क्षेत्र में पड़ती हैं। उत्तराखण्ड की प्रमुख नदियाँ इन्हीं हिमानियों से जन्म लेती हैं। यहीं अन्तिम सीमान्त बस्तियाँ—गुन्जी, कुटी, नाबी, नपलच्यू, रालम, मिलम, नीती, माणा, गंगी, गंगोत्री, मुखबा, हरसिल, हनुमान चट्टी, खरसाली, साँकरी, ओसला आदि —स्थित हैं।

इन शिखरों की उत्तरी मन्द ढाल से तिब्बती परिवेश शुरु हो जाता है। यहाँ कॉमेट (7,756 मी.) जैसे कुछ शिखर तथा लिपूलेक, कुंग्रीबिंग्री, दारमाधूरा, लावे धूरा, नीती, माणा, बंगनाल, पलमसुम्दा तथा नेलंग जैसे तिब्बत में खुलने वाले दर्रे हैं। उत्तराखण्ड की एक से दूसरी घाटी को जोड़ने वाले दर्रे— सिनला, रालम, ऊँटाधूरा, खिंगर धूरा, कालिन्दीखाल आदि—भी इसमें पड़ते हैं। ने ला, लमखागा तथा रुपिन दर्रे से बासपा नदी की घाटी में जाया जा सकता है। जनसंख्या से पूरी तरह रहित (कुछ सैन्य पड़ाव छोड़ कर) तथा बहुत कम वनस्पतियों वाला होने के बावजूद यह क्षेत्र सामरिक तथा सांस्कृतिक-व्यापारिक महत्त्व का रहा है।

स्थलाकृतिक दृष्टि से उत्तराखण्ड हिमानियों, तालों, नदियों, बुग्यालों और जंगलों का क्षेत्र है। सर्वोच्च शिखरों के अगल-बगल पसरे गलों से जन्म लेती नदियों ने उत्तराखण्ड और अन्ततः गंगा-यमुना के मैदान के भूगोल की रचना की है। यहाँ के भूगोल को भूगर्भ असाधारण रूप से प्रभावित करता रहा है। अन्य अनेक भ्रंश तथा दरारों के साथ दो मुख्य भ्रंश अत्यन्त प्रभावी हैं। शिवालिक तथा बाह्य हिमालय के सन्धि स्थल में मेन बाउण्ड्री थ्रस्ट (एम.बी.टी.) तथा महा हिमालय और टैथिस हिमालय के बीच में मेन सेण्ट्रल थ्रस्ट (एम.सी.टी.) हिमालय के आर-पार गुज़रती हैं। इन दोनों भ्रंशों तथा कुछ अन्य प्रभावी भ्रंशों से सैकड़ों छोटे-बड़े भ्रंश आड़े-तिरछे निकलते-मिलते हैं। एक प्रकार से इन भ्रंशों ने हिमालयी धरती के भीतर-बाहर की हलचलों यानी भूकम्प से भू-स्खलन और बाढ़ तक को जन्म तथा विस्तार दिया है।[6]

हिमानियों की गत्यात्मकता ने उच्च तथा टैथिस हिमालय में अनेक चौरस मैदान बना दिये हैं। नदियों का पाट फैलाव वाला है। जैसे ही सैंट्रल क्रिस्टलाइन क्षेत्र आता है तो नदियों को गहरी-सँकरी घाटियों (गॉर्ज) से गुज़रना पड़ता है। विशाल पत्थर तथा चट्टानें उनकी राह रोकने की कोशिश करती हैं। इस क्षेत्र के ऊपरी हिस्सों में बर्फ़ रेखा से नीचे और वृक्ष रेखा के ऊपर घास के मैदान हैं जिन्हें 'बुग्याल' और कहीं-कहीं 'पयार' कहा जाता है।

बुग्याल स्थानीय लोक संस्कृति से जुड़े देव-स्थलों, लोक गाथाओं के नायक-नायिकाओं के विचरण क्षेत्र तथा जात यात्राओं के साथ पशुचारण और जड़ी-बूटी की परम्परा का अभिन्न हिस्सा हैं।[7]

उच्च हिमालय में पशुचारण—विशेष रूप से भेड़ तथा बकरी, घोड़े तथा याक—प्रमुख कार्य-कलाप है। घाटियों में स्थायी खेती का विकास सम्भव हुआ। अधिकांश उपजाऊ क्षेत्र छोटी नदियों के किनारे हैं। यद्यपि कुछ सम्पन्न घाटियों को छोड़ कर खेती आरम्भ से ही अपनी मिट्टी से जुड़ने की औपचारिकता मानी जाती रही है, लेकिन वास्तविकता में खेती यहाँ का एक प्रमुख आर्थिक क्रियाकलाप है। यह आजीविका का सम्पूर्ण न होकर भी एक महत्त्वपूर्ण साधन रहा है। पशुपालन खेती का अनिवार्य हिस्सा है। भोटान्तिकों में खेती नाममात्र को है तो तराई-भाबर में खेती पिछली आधी सदी में हरित क्रान्ति के यान्त्रिक युग में पहुँच गयी है। तराई-भाबर में सन् 1947 के बाद खेती का विस्तार हुआ, जो सन् 1960-70 के बीच अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा। भोटान्तिक क्षेत्र में पशुपालन या पशुचारण ने कुटीर उद्योगों तथा भारत-तिब्बत व्यापार—जो सन् 1962 से समाप्तप्रायः है और पिछले कुछ सालों से लिपूलेक मार्ग से पुनः शुरू होकर भी व्यापक रूप नहीं ले पाया है—को स्थानीय निवासियों की जीविका के प्रमुख साधन के रूप में विकसित किया था। सन् 1967 में आरक्षण मिलने के बाद भोटान्तिक क्षेत्र की आबादी का बड़ा हिस्सा राजकीय नौकरियों में आना शुरू हुआ, जिससे वहाँ का सदियों में विकसित विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक परिदृश्य एकदम बदल गया है बल्कि ध्वस्त हो गया है।

आज खेती तथा उसके पूरक व्यवसायों के आधे-अधूरेपन का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पहाड़ी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा आजीविका की खोज में उत्तराखण्ड से बाहर चला जाता है और तरह-तरह की नौकरियाँ करके उत्तराखण्ड के दूरस्थ-दुर्गम इलाक़ों में स्थित अपने परिवारों के अस्तित्व को बनाये रखता है, लेकिन धनादेश की यह अर्थव्यवस्था मात्र 150 साल पहले औपनिवेशिक शासन के दौर में उत्तराखण्ड के आत्म-निर्भर समाज में रोपी गयी थी और फिर बहुगुणित होती गयी। आज यह पलायन और पर-निर्भरता का प्रतीक बन गयी है। सूत्र रूप में कहा जाये तो यह अर्थव्यवस्था जितने समाधान प्रस्तुत करती है, उतनी ही समस्याएँ भी।

स्पष्ट ही उत्तराखण्ड का भूगोल अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरह की जीवन पद्धतियों को विकसित करने का निमित्त बना। इसलिए उत्तराखण्ड के अनेक क्षेत्रों में पशुचारण, खेती, कुटीर उद्योग तथा लघु व्यापार की मिली-जुली जीवनपद्धतियाँ विकसित हुईं। आज भी पूरे उत्तराखण्ड में 12-13 प्रतिशत ज़मीन पर खेती होती है। 88 प्रतिशत पर्वतीय माने गये उत्तराखण्ड में

मात्र 6 प्रतिशत पर खेती है और भोटान्तिक में यह प्रतिशत 3-4 तक आ जाता है।[8] कदाचित् भौगोलिक कारणों से ही हिमालय के अधिकांश राज्य या क्षेत्र लगातार स्वतन्त्र और स्वायत्त बने रहे। यही क्रम फिर हमें भूगोल और इतिहास के हिमालयी अन्तःसम्बन्धों को समझने की ओर ले जाता है। दुनिया के और पर्वतों में भी यह सम्बन्ध अध्ययन का विषय बना है।[9]

इसी के साथ उत्तराखण्ड का प्राकृतिक तथा पारिस्थितिक इतिहास भी जुड़ा है। हिमालय की विवर्तनिकी (टैक्टोनिक्स) का भूकम्पों तथा भू-स्खलनों से सीधा सम्बन्ध है।[10] हिमालय का नाज़ुक पारिस्थितिक तन्त्र इसके अपेक्षाकृत नवजात होने से अन्तर्सम्बन्धित है। बाढ़ भी इसी पारिस्थितिकी से सम्बन्धित है। पहाड़ों से स्वाभाविक रुप से मिट्टी मैदानों तथा समन्दर को जाती है यानी प्राकृतिक आपदाएँ हिमालय के स्वभाव में हैं। ग्लोबल वॉर्मिंग तथा मनुष्य के विभिन्न कार्य-कलापों ने इस प्रक्रिया को त्वरित किया है। उत्तराखण्ड के जंगल और चरागाह महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक अवदान हैं। 200-250 किमी. की चौड़ाई में उत्तराखण्ड के पहाड़ 150 से 7,817 मीटर तक उठते चले जाते हैं।[11] इस छोटे से भूगोल में बाघ, हाथी से गुलदार, हिमचितुवा, कस्तूरी मृग और याक; मोर से मोनाल या तराई-भाबर के अजगर से गुंजी (ब्यास) के छोटे साँपों तथा साल-शीशम से बाँज-देवदार तथा जूनीपर या भोजपत्र जैसी प्रजातियों का होना दरअसल, प्राकृतिक इतिहास के अधिक गहरे अध्ययन-विश्लेषण की माँग करता है। हिमालय पार के पक्षियों का हर साल इस ओर आना, ठहरना और फिर वापस जाना भी इसके अन्तर्गत है।[12]

1.4 बालेश्वर (चम्पावत) मंदिर का स्थापत्य

मात्र 6 प्रतिशत पर खेती है और भोटान्तिक में यह प्रतिशत 3-4 तक आ जाता है।[8] कदाचित् भौगोलिक कारणों से ही हिमालय के अधिकांश राज्य या क्षेत्र लगातार स्वतन्त्र और स्वायत्त बने रहे। यही क्रम फिर हमें भूगोल और इतिहास के हिमालयी अन्तःसम्बन्धों को समझने की ओर ले जाता है। दुनिया के और पर्वतों में भी यह सम्बन्ध अध्ययन का विषय बना है।[9]

इसी के साथ उत्तराखण्ड का प्राकृतिक तथा पारिस्थितिक इतिहास भी जुड़ा है। हिमालय की विवर्तनिकी (टैक्टोनिक्स) का भूकम्पों तथा भू-स्खलनों से सीधा सम्बन्ध है।[10] हिमालय का नाज़ुक पारिस्थितिक तन्त्र इसके अपेक्षाकृत नवजात होने से अन्तर्सम्बन्धित है। बाढ़ भी इसी पारिस्थितिकी से सम्बन्धित है। पहाड़ों से स्वाभाविक रूप से मिट्टी मैदानों तथा समन्दर को जाती है यानी प्राकृतिक आपदाएँ हिमालय के स्वभाव में हैं। ग्लोबल वॉर्मिंग तथा मनुष्य के विभिन्न कार्य-कलापों ने इस प्रक्रिया को त्वरित किया है। उत्तराखण्ड के जंगल और चरागाह महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक अवदान हैं। 200-250 किमी. की चौड़ाई में उत्तराखण्ड के पहाड़ 150 से 7,817 मीटर तक उठते चले जाते हैं।[11] इस छोटे से भूगोल में बाघ, हाथी से गुलदार, हिमचितुवा, कस्तूरी मृग और याक; मोर से मोनाल या तराई-भाबर के अजगर से गुंजी (ब्यास) के छोटे साँपों तथा साल-शीशम से बाँज-देवदार तथा जूनीपर या भोजपत्र जैसी प्रजातियों का होना दरअसल, प्राकृतिक इतिहास के अधिक गहरे अध्ययन-विश्लेषण की माँग करता है। हिमालय पार के पक्षियों का हर साल इस ओर आना, ठहरना और फिर वापस जाना भी इसके अन्तर्गत है।[12]

1.4 बालेश्वर (चम्पावत) मंदिर का स्थापत्य

प्राकृतिक इतिहास के क्रमिक अध्ययन से विभिन्न जीव तथा वनस्पति प्रजातियों के विनाश की जानकारी भी मिल सकती है। उदाहरणार्थ, जो गेण्डे सिन्धु सभ्यता के समय पश्चिमोत्तर भारत तक विचरण करते थे, वे 1840 के दशक में उत्तराखण्ड के पाद प्रदेश में भी पाये गये थे।[13] ऐसा सन्दर्भ चीते, मोनाल, माउण्टेन क्वेल, कस्तूरी मृग तथा हिमचितुवा या कुछ पेड़ों—जैसे च्यूर—और वनस्पति प्रजातियों के बारे में भी प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ आधुनिक विकास के दौर में डूबन तथा विस्थापन पर भी गहरी निगाह डालने की ज़रूरत है। इस तरह का अध्ययन निश्चय ही पारिस्थितिक इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों को उजागर करेगा। इससे मनुष्य की विकास-यात्रा में निहित ध्वंस तथा निर्माण का सिलसिला भी उजागर होगा।

यों तो विभिन्न पुराने ग्रन्थों में उत्तराखण्ड की किसी-न-किसी नाम से चर्चा होती रही है, पर यहाँ के भूगोल के सम्बन्ध में एक और बात कहनी उचित होगी कि वर्तमान रूप में कदाचित् मध्यकाल में रचे गये 'मानसखण्ड' तथा 'केदारखण्ड', जो कि दोनों 'स्कन्दपुराण' के हिस्से बताये जाते हैं, यहाँ के पर्वतों, नदियों, विभिन्न क्षेत्रों तथा तीर्थों के बारे में विस्तृत जानकारी देते हैं। विशेष रूप से उत्तराखण्ड के स्थान-नामों के बारे में इन दोनों ग्रन्थों से पर्याप्त जानकारी मिलती है।[14] मानसखण्ड में कुल 7 हज़ार तथा केदारखण्ड में 11 हज़ार श्लोक बताये गये हैं।[15] केदारखण्ड में 206 तथा मानसखण्ड में 179 अध्याय हैं। इनके अध्ययन से पुराणकारों द्वारा वर्णित तथा वर्तमान भूगोल का अन्तर—यदि कोई है तो—भी ढूँढ़ा जा सकता है।

विभिन्न मानव समूह तथा उत्तराखण्डी समाज की रचना

उत्तराखण्ड के इतिहास का अगला आयाम विभिन्न मानव समूहों तथा समाजों से जुड़ा है। इस क्षेत्र में मनुष्य के आगमन तथा बसाव की प्रक्रिया जानने के लिए न सिर्फ़ नृतत्त्व-पुरातत्त्व तथा इतिहास में जाने की बल्कि यह जानने की ज़रूरत है कि कोल, काकेशस तथा मंगोल मूल से जुड़े विभिन्न प्राचीन समूहों या उप समूहों का उत्तराखण्ड में किस तरह आगमन तथा तत्पश्चात् संघर्ष, समझौता और समन्वय हुआ।[16] इस प्रक्रिया में एक समूह ने दूसरे से सीखने का कितना प्रयास किया। किस तरह इन समूहों ने अपनी प्रारम्भिक संस्कृति का निर्माण किया, आर्थिक क्रियाकलापों को विकसित किया और इस हेतु लोक विज्ञान के प्रयोग किये, यह सब अत्यन्त रोचक है। यहाँ खेती, पशुचारण, व्यापार, पेयजल तथा सिंचाई की व्यवस्था, खनन तथा धातु कर्म और यातायात-पुल आदि किन पारिस्थितिक तथा भू-राजनीतिक दबावों के बीच विकसित हुए होंगे यह जानना अब अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह पारम्परिक

ज्ञान हमारे इतिहास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है तथा हमारे नये इतिहासकारों को यह सब उजागर करना है।

यदि आज उत्तराखण्ड में शिल्पकार, शौका, वनराजि, थारु, बोक्सा, गूजर, नेपाली, मध्यकाल तथा आधुनिक काल (विभाजन के समय आये समूह) में यहाँ आयी हुई सवर्ण जातियों, जनजातियों/समुदायों पर नज़र डाली जाये तो वे उन मानव सम्पर्कों की विविधता को उजागर करते हैं, जो यहाँ सम्भव हुए।[17] इस क्षेत्र को आर्यों का आदि देश भी कहा जाता रहा है।[18] यह पड़ताल करने की चुनौती हमारे सामने है कि क्या अन्य मानव समूह यहाँ नहीं आये थे? यदि खस ऋग्वेद से पहले के मानव समूह थे तो इस प्रश्न को कैसे देखें और यदि कोलवंशी समूह यहाँ पहले से थे तो इस क्षेत्र को सिर्फ़ एक मानव प्रजाति के साथ जोड़ने का कितना औचित्य है? खसों तथा शकों को एक ही मानव समूह के दो प्रवाहों की तरह भी माना जाता है और यह कहा जाता है कि यदि हिमालय के तमाम ग्राम देवी-देवताओं की कल्पना खसों ने की थी तो बूटधारी सूर्य प्रतिमाएँ तथा सूर्य मन्दिर शकों की देन हैं।[19]

आज यह भी ज़्यादा गहराई से जानने की ज़रूरत है कि उत्तराखण्ड की विभिन्न समाज-संस्कृतियों ने किस तरह अलग-अलग समयों में जन्मे और अलग-अलग स्त्रोतों से आये मिथकों-प्रतीकों तथा धर्मों-संस्कृतियों को आत्मसात् करने का प्रयास किया और अपने अलग लोक धर्म विकसित किये। आकर्षक और जटिल प्राकृतिक व्यक्तित्व के कारण उत्तराखण्ड के बारे में भी पुराण कथाओं के अन्तहीन सिलसिले ने जन्म लिया।[20]

विभिन्न धर्मों ने निश्चय ही यहाँ के अनूठे तथा 'पवित्र' प्राकृतिक आकर्षण से विवश होकर अपने को हिमालय से जोड़ा है। उत्तराखण्ड में भी कम-से-कम हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लामी तथा सिक्ख धर्मावलम्बी समाज-संस्कृतियों ने अपने एकदम भिन्न मिथकों को पाला-पोसा है। भारतीय उपमहाद्वीप की शैव, शाक्त और वैष्णव परम्परा उत्तराखण्ड में स्पष्ट दिखती है।[21] शिव उत्तराखण्ड के भी देव नायक हैं। सर्वोच्च क्षेत्र शिव के प्रभाव में है। पंचकेदारों से विभिन्न बिन्सरों (वीर्णेश्वरों) तथा लाखामण्डल, बागेश्वर तथा जागेश्वर तक शिव के स्थल हैं। अमरनाथ, कैलास तथा काठमाण्डू आज भी इसी शिव क्षेत्र के विस्तार माने जाते हैं।

दक्षिणी पट्टी में पुण्यागिरी से सुरकण्डादेवी तक शाक्त क्षेत्र है या मातृ देवी की परम्परा का विस्तार है। बीच में बदरीनाथ की तरह कुछ वैष्णव क्षेत्र हैं तो नन्दा देवी नाम के पर्वत शिखर, देवी मिथक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ एक अत्यन्त जीवन्त यात्रा परम्परा के साथ उपस्थित हैं।[22] इस क्षेत्र में अन्य देवियाँ भी हैं तो लाटू जैसे सह देवता भी। नदी के रूप में गंगा की 'पवित्रता' भारतीय समाज में उस दौर में भी सर्वमान्य है, जब हम नदी में न

पानी और न पवित्रता को बनाये रख पा रहे हैं। पवित्रता तथा पोंगापन्थी के अन्तःसम्बन्धों का भी अलग से विश्लेषण किया जाना चाहिए।

तिब्बती सीमान्त में अफ़ग़ानिस्तान से म्याँमार सीमा तक मौजूद बौद्ध पट्टी सांस्कृतिक ही नहीं, भौगोलिक रूप से भी अधिकांश क्षेत्रों में तिब्बत से जुड़ी हुई है, पर यह उत्तराखण्ड में अनेक ऐतिहासिक कारणों से लुप्तप्रायः है। वर्तमान में जाड समुदाय इस परम्परा का अवशेष हैं। कुछ बौद्ध स्मारकों के अवशेष अवश्य उपलब्ध होते हैं। सेनापानी, बौधाण, बद्रीनाथ, गोविषाण, कासनी तथा हनोल के सन्दर्भ इस लुप्त बौद्ध परम्परा की खोज की चुनौती हमें देते हैं, जबकि हिमालय में अन्यत्र यह परम्परा अभी भी जीवन्त है।[23]

इस्लाम धर्मावलम्बियों का एक महत्त्वपूर्ण स्थल पिरान कलियर शरीफ़ उत्तराखण्ड में है तो सिक्खों के तीन महत्त्वपूर्ण तीर्थ—नानकमत्ता, रीठासाहब तथा हेमकुण्ड साहब—यहाँ हैं। इसी तरह लोक-देवताओं तथा घुमन्तू देवताओं की एक और आकर्षक और बड़ी परम्परा उत्तराखण्ड में उपस्थित है। दरअसल, लोक देवताओं की यह विविधता यहाँ की प्राकृतिक तथा मानवीय विविधता से जुड़ी है। जिन स्थानों पर यहाँ के मनुष्य ने अपनी संस्कृति, विचार या आस्था को तीर्थ का रूप दिया, वे मन्दिर या मठ के बिना भी दुनिया के सुन्दरतम स्थान थे और हैं। यह तथ्य प्राचीन पूर्वजों के सौन्दर्य-बोध का और उस समझ का दिग्दर्शक भी है, जो वन्यता में ही पवित्रता ढूँढ़ती रही है।[24]

पर पूरे उत्तराखण्ड में लोक देवताओं का एक अलग और लम्बा क्रम है। घाटियों, समुदायों, गाँवों और परिवारों तक के देवता हैं। ग्राम देवता, भूमि देवता, फल-फसल और व्यापार के देवता। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के बिना आपका काम चल सकता है पर लोक देवता के बिना नहीं। गोरिल, लटौल, महासू (यह किसी भी तरह महाशिव नहीं हैं), सुमेश्वर, पाण्डव आदि में यह प्रक्रिया देखी जा सकती है। यदि चामू अपने चार मुख्य मन्दिरों के साथ पश्चिमी नेपाल से पाली पछाऊँ (रानीखेत) तक फैला है तो गोरिल या गोल्ल समस्त कुमाऊँ के सैकड़ों मन्दिरों से होकर पौड़ी के सर्वोच्च शिखर कण्डोलिया तक पहुँचा हुआ है। रवाँई का महासू दरअसल, उत्तराखण्ड के पार हिमाचल प्रदेश तक के क्षेत्र में पूज्य है बल्कि हिमाचल के उस क्षेत्र को पुराने महासू ज़िले (अब जिला शिमला) के रूप में जाना जाता था। महासू देवलाड़ी के चार बेटों के रूप में पूजित हैं—बासिक, पबासिक, बोठा तथा चालदा। उसका प्रमुख गण शेड़ कुड़िया भी पूजित है। दूसरी ओर थत्याल-भुम्याल की सर्वत्र उपस्थिति के साथ गंगनाथ, सैम, छुरमल, भण्डारी गोल्ल, कालछिन, छिपला, ऐड़ी, बगडवाल, कैलपीर, हरू, कुकरसी, मेर मेशरू, दानू, विजर देवता, सुमेश्वर, सेम, नागराजा, पोखू, गोगापीर, निरंकार, खुदाई, विभिन्न नाग आदि सैकड़ों लोक देवता हैं।[25] पशुचारकों, खेतिहरों तथा व्यापारियों के अलग देवता भी

हैं। देवताओं की अपनी अपनी क्षेत्रीयता है[26] और अपने यात्रा पथ तथा पड़ाव हैं। समाज के अनुसार देवताओं के स्थान बदलते रहे हैं। घुमन्तू देवताओं की उपस्थिति भी उत्तराखण्ड में बनी हुई है।[27]

उत्तराखण्ड में अनेक धर्म तथा उनकी शाखाएँ जीवन्त बनी हुई हैं और अब यहाँ ऐसे समुदाय, समाज या क़बीले नहीं बचे हैं जो इस दुनिया में प्रचलित किसी धर्म को नहीं मानते। शायद कभी बनराजियों या कुछ अन्य समूहों के साथ यह स्थिति रही होगी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कोलों, खसों-शकों, किरातों से विकसित शौकों, गूजरों, वनराजियों, थारू, बोक्साओं तथा जौनसारियों आदि की मुख्य रुचि बहुत समय तक प्रकृति में रही, संस्थानिक धर्म में नहीं।

राजनीतिक परिवर्तनों के साथ तीर्थयात्रा तथा भारत-तिब्बत व्यापार की परम्परा ने विभिन्न समुदायों के समागम में योगदान दिया। जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव, श्वेन त्साङ, आदि शंकराचार्य, गोरखनाथ, गुरुनानक से कुछ जेसुइट पादरियों और केशव चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा अरविन्द घोष तक की उत्तराखण्ड यात्राओं का सन्दर्भ मिलता है। अनेक बौद्ध प्रचारक तथा अन्वेषक उत्तराखण्ड होकर आते-जाते रहे होंगे। सैयदों और सूफ़ियों की गाथाएँ आज भी यहाँ गायी जाती हैं। रामकथा यदि सीमित रही है (रामलीला तथा होली का प्रचलन भी मध्यकाल में हुआ लगता है) तो 'महाभारत' यहाँ एक विस्तारित कथा है। कौरव तथा पाण्डवों का लोक देवताओं में रूपान्तरण उत्तराखण्ड में सबसे ज़्यादा सम्भव हुआ है।[28] यह तथ्य लोक साहित्य में भी मुखरित हुआ है और इसका अधिक गहन अध्ययन होना है।

विभिन्न लघु समाज-संस्कृतियाँ, जो अनेक बार एक-दूसरे से अपरिचित होते हुए भी एक-दूसरे से अन्तःसम्बन्धित लगती हैं, ही यहाँ की समग्र संस्कृति को बनाती हैं। इसी में उनके उत्सव, मेले, गीत, नृत्य, संगीत-उपकरण, पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न रूप हैं। सामाजिक प्रथाएँ हैं। कहीं बहुपतित्व का प्रचलन था तो कहीं बहु पत्नीत्व का।[29] कहीं विधवा विवाह प्रचलित था और कहीं यह असम्भव बना हुआ है। कहीं मृतक को दफ़नाने की प्रथा है तो कहीं जलाने की।[30] ये लघु समाज-संस्कृतियाँ कभी किसी एक केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं रहीं। अभी इनके पारम्परिक क़ानूनों का विधिवत् अध्ययन होना है यानी समय-समय पर हुए राजनीतिक बदलावों का अधिकांश पर असर नहीं या कम पड़ा।

उत्तराखण्ड की विभिन्न लघु समाज-संस्कृतियों में पूरब-पश्चिमी भौगोलिक निरन्तरता के बावजूद उत्तर-दक्षिणी सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितिक रिश्ता भी है। उत्तरी भारत के मैदानी समाज और तिब्बती समाज

का रिश्ता उत्तराखण्ड के विभिन्न समुदायों के माफ़र्त सदियों पहले क़ायम हुआ और विभिन्न राज्य-व्यवस्थाओं या शासन प्रणालियों के बावजूद क़ायम है। प्रान्तों-राष्ट्रों के बीच उभयनिष्ठ समाज-संस्कृतियों के स्वाभाविक क्षेत्रों का होना भी अध्ययन का नया आकर्षण हो सकता है, जैसे काली तथा टौंस-यमुना घाटी या भोटान्तिक और तराई-भाबर। दरअसल, ये क्षेत्र सांस्कृतिक विविधता के अक्षय द्वीप हैं। इनमें शिकारी-संग्राहक, पशुचारक, खेतिहर, व्यापारी और नौकरी-पेशा जैसी अनेक सामाजिक-आर्थिक पर्तें मौजूद हैं।

उत्तराखण्ड की भाषा-बोलियाँ, कलाएँ तथा अन्य सांस्कृतिक-साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ इन्हीं जीवन पद्धतियों के बीच विकसित हुई हैं। आज भी इस समाज के अनेक हिस्से 'अनपढ़' या 'निरक्षर' हैं, लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें 'बहुभाषी' या कम-से-कम तीन भाषी बनाया है। उत्तराखण्ड के अधिकांश लोगों की बहु या त्रिभाषिकता पर अध्ययन कार्य की ज़रूरत बनी हुई है। भारोपीय आर्य भाषाओं, आस्ट्रिक-बर्मी-तिब्बती तथा द्रविड़ भाषाओं का सहस्त्राब्दियों में होता रहा आदान-प्रदान आज उत्तराखण्ड की भाषा-बोलियों में प्रकट होता है। आज कम-से-कम 18 भाषाओं को बोलने वाले उत्तराखण्ड की भाषाओं पर जॉर्ज ग्रियर्सन से डी.डी. शर्मा तक विभिन्न भाषाविदों द्वारा जो काम हुए हैं, वे ऐतिहासिक अध्ययनों हेतु अत्यन्त मददगार साधन हैं।[31]

1.5 कल्याण चन्द का ताम्रपत्र शाके 1667 या सन् 1745

आध्यात्मिक पक्ष के साथ उत्तराखण्ड की संस्कृति और इसके शेष पड़ोसी देशों या क्षेत्रों से सम्बन्धों को जानने हेतु तीर्थयात्रा की परम्परा को समझना आवश्यक है। उत्तराखण्ड के चार धाम, पंच केदार-पंच बदरी-पंच प्रयाग (सच तो यह है कि ये सभी पाँच से ज़्यादा ही हैं), नन्दादेवी सालाना

जात तथा राजजात, दर्जनों अन्य जातें या देव यात्राएँ, हरिद्वार का कुम्भ या पुण्यागिरि मेला, पीरान कलियर शरीफ़ और हेमकुण्ड साहिब से जुड़ी जीवन्त परम्पराएँ अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक धाराओं के सह-अस्तित्व का प्रमाण हैं।[32] साम्प्रदायिकता से इस क्षेत्र का बचा होना तथा जातीयता की पृष्ठभूमि या जातीय स्तरीकरण का मिज़ाज[33] तथा संन्यासियों के विभिन्न सम्प्रदाय भी अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं।

पूरे देश में उक्त तीर्थों के पीठासीन देवताओं के नाम पर अपनी सन्ततियों के नाम रखने की परम्परा भी है। उत्तराखण्ड की ज़्यादातर तीर्थयात्राएँ मौसमी हैं और ग्रीष्म से शरद के बीच सम्पन्न होती हैं। ये यात्राएँ उत्तराखण्ड से एशिया के अन्य क्षेत्रों के लोगों का सम्बन्ध भी जोड़ती हैं। एक समय तीर्थयात्रा के साथ यात्रा मार्गों तथा चट्टियों (पड़ाव) की व्यवस्था जुड़ी थी। स्थानीय समाज किस तरह आगन्तुकों के आवास और भोजन की व्यवस्था करता था, इसके उदाहरण आधुनिकीकरण के दौर में भी नज़र आते हैं।[34] हिमालय के अन्य तीर्थों से भिन्न उत्तराखण्ड के चार धाम गर्मियों में ऊपर तथा जाड़ों में नीचे आते-जाते रहते हैं। मुख्यतः बद्रीनाथ-जोशीमठ, केदारनाथ/मदमहेश्वर-उखीमठ, गंगोत्री-मुखबा, यमुनोत्री-खरसाली, रुद्रनाथ-गोपेश्वर, तथा तुंगनाथ-मक्कूमठ के बीच भक्त ही नहीं, भगवान भी यात्रा करते हैं। यह निर्धारण भूगोल तथा मौसम द्वारा किया गया है। चार धाम की यात्रा जबरन बारहों महीने नहीं की जा सकती है।

पुरातात्त्विक परिदृश्य

हिमालय के दक्षिण में स्थित शिवालिक पहाड़ियों में सन् 1932 में मानव पूर्वजों के अवशेषों की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी 'रामापिथेकस' मिली, जिसकी उम्र एक करोड़ बीस लाख से एक करोड़ पचास लाख साल मानी गयी थी। यह मानव पूर्वज हिमालय के तराई-भाबर तथा दून प्रदेश के क़रीब विचरण कर रहा था।[35] इसके बाद लाखों वर्ष तक किसी और मानव विचरण का सन्दर्भ नहीं मिलता है। तत्पश्चात् हिमालय के कुछ हिस्सों से पाषाणकालीन—पुरा (paleolithic), मध्य (mesolithic) तथा नवपाषाण (neolithic)—उपकरणों के मिलने का सिलसिला शुरु हुआ, जिन्हें 15-20 लाख साल पुराना माना गया है।[36] इसके साथ ही, उत्तराखण्ड में खोजी गयी अनेक चित्रित गुफाएँ तथा महाश्म (megalithic) संस्कृति के अवशेष पाषाण युग से ही सम्बद्ध हैं।[37] अलकनन्दा घाटी में पाषाणकालीन शिल्प, मध्य पाषाणकालीन गुफाचित्रों तथा मलारी में महा पाषाणकालीन शवागार का मिलना महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक साक्ष्य हैं।[38] इसी तरह गणाई, सुपना, जैनल, नौला तथा श्रीकोट आदि पश्चिमी रामगंगा घाटी के विभिन्न

स्थानों पर मिले विभिन्न कप मार्क (बनराजी समुदाय इन्हें जाखिलो ढुंङ कहते हैं) तथा शवागारों को इस दौर के अन्य महत्त्वपूर्ण पुरावशेषों में माना जाता है, जोकि हिमालय में निरन्तर मिलते रहे हैं।[39]

बुर्जाहोम की तरह उत्तराखण्ड से मिले उपकरण भी नवाश्म तथा महाश्म दोनों संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।[40] इसके साथ ही, कुछ स्थानों से ताम्र निर्मित मानव आकृतियों का मिलना हिमालय तथा गंगा-जमुना के मैदान (पांचाल) के समाजों से सम्बन्धों को उजागर करता है और साथ ही, यह हमारे इतिहास के कैल्कोलिथिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। हिमालय के अनेक हिस्सों में लौहयुग को चित्रित धूसर मृदभाण्ड (पी.जी.डब्ल्यू.) संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। राणीहाट, थापली, मोरध्वज तथा अन्यत्र हुई खुदाइयों में पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृति का विस्तार मिला है, जो हमें ईसा पूर्व 1,000 साल तक ले जा सकता है।[41] पाषाण शव पेटिका (सिस्ट तथा लधूड़ा में सिस्ट बरीयल), पात्र शवागार (अर्न), ताम्र मानवाकृतियों तथा विविध मुद्राओं का उत्तराखण्ड के कुछ क्षेत्रों में मिलना भी नये अन्वेषणों तथा व्यापक पुरातात्त्विक खुदाइयों हेतु दबाव देता है।

क्या पाकिस्तान की स्वात घाटी; भारत के लद्दाख, किन्नौर, धौलाधार; पश्चिम-दक्षिणी तिब्बत तथा नेपाल के मुस्तांग आदि में मिले पुरावशेषों से इनका कोई सम्बन्ध था? क्या इनमें से कुछ पुरावशेष समकालीन भी थे? जल्दी ही नये अध्ययनकर्ता यह खोज निकालेंगे। लोहे तथा ताम्बे के प्रयोग तथा खनन पद्धतियों पर डाली गयी दृष्टि ने अनेक नये तथ्य उजागर किये हैं।[42] उत्तराखण्ड में भी सैकड़ों पुरातात्विक स्थल खुदाई के इन्तज़ार में हैं तो हज़ारों ऐतिहासिक स्मारक, मन्दिर, मठ, क़िले, बावड़ियाँ, धर्मशालाएँ तथा समाधियाँ संरक्षण के साथ अध्ययन-विश्लेषण की माँग करती हैं।[43]

हज़ारों बिरखमों (वीर स्तम्भ), शिलालेखों, ताम्रपत्रों का भी संकलन-अध्ययन होना है।[44] उत्तराखण्ड की पत्थर, मिट्टी, धातु या काष्ठ की बनी प्रतिमाएँ यदि एक विशिष्ट प्रकार की स्थापत्य कला तथा मूर्तिकला के रूप को उजागर करती हैं तो स्थापत्य, मूर्तियों तथा चित्रों के अध्ययन से इन पर मध्येशिया, तिब्बत तथा उत्तरी भारत में प्रचलित कलाओं का प्रभाव परखा जा सकता है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि उत्तराखण्ड के कुछ हिस्सों की भवन निर्माण कला भूकम्प प्रतिरोधी है।[45] सदियों तक भूकम्पों को अनुभव करने के बाद यहाँ के समुदायों ने इनके साथ रहना सीख लिया और मकानों के निर्माण की सुरक्षित परम्परा विकसित हुई।

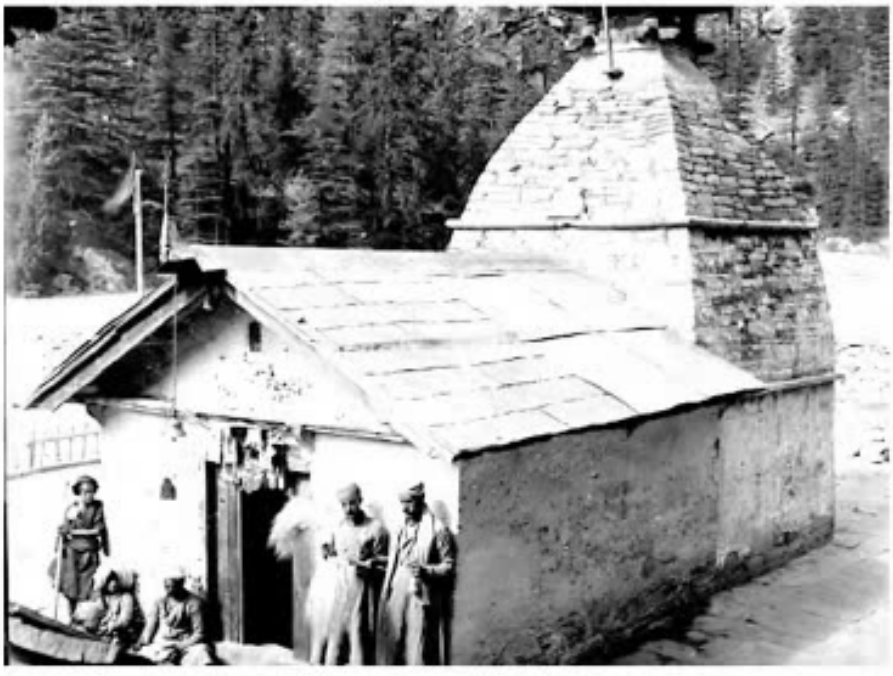

1.6 गंगोत्री मन्दिर, 1882 : यह मन्दिर 1943 की बाढ़ में बहा (फ़ोटो : जीएसआई)

विभिन्न मन्दिरों (जागेश्वर, केदारनाथ, गोपेश्वर, लाखामण्डल, पुजेली, देवप्रयाग, कटारमल, तुंगनाथ, पैठाणी, हनोल, आदिबदरी, पलेठी, पाण्डुकेश्वर, बालेश्वर आदि) तथा मूर्तियों/प्रतिमाओं (कासनी, बैजनाथ, एकहथिया देवाल, जागेश्वर, लाखामण्डल, गोपेश्वर, राणीहाट, कालीमठ, पलेठी, सिमली, मढ़, बिनसर, मोरध्वज आदि) के अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता है कि किस तरह स्थानीय शिल्पकारों ने इस हेतु अधिकतर अपने क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया। धातु तथा काष्ठ प्रतिमाएँ भी इस क्रम में देखी जा सकती हैं।

गुफाचित्रों से पहाड़ी क़लम तथा ऐपण (अल्पना) की चित्रकला तक यह अत्यन्त प्रभावशाली विकास यात्रा उत्तराखण्ड में खोजी जा सकती है।[46] इसी प्रकार हिमालय तथा आस-पास के क्षेत्रों में प्रचलित मुद्राओं—विशेष रूप से अनेक स्थानों से उपलब्ध कुणिन्द तथा यौधेय सिक्कों—से भी राजनीतिक-आर्थिक इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है।[47] यह प्रश्न भी है कि इन सिक्कों के प्रचलन के बावजूद उत्तराखण्ड में विनिमय-व्यापार (बार्टर) की पद्धति ही क्यों पिछली सदी तक प्रचलन में रही?

उत्तराखण्ड के लोक उपकरण तथा लोक विधियाँ, जो प्रचलित पारम्परिक विज्ञान और स्थानीय आवश्यकता के समन्वय से जन्मी होंगी, भी सामाजिक तथा लोक वैज्ञानिक विकास के विभिन्न चरणों को उजागर करती हैं। ये उपकरण तथा विधियाँ पशुपालन, खेती, सिंचाई, यातायात-परिवहन (पुल, नाव या तुमड़े आदि), व्यापार, आखेट, कताई-बुनाई, चमड़ा शोधन, औषधि निर्माण, लेखन-चित्रण, पूजा-पद्धति या अन्य कर्मकाण्डों से जुड़े हुए

हैं। इनमें अनेक बार सादगी और कुछेक बार कला की उत्कृष्टता भी दिखती है।[48]

उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी सतत इस्तेमाल हो रहे मुखौटे न सिर्फ़ मानव कल्पना की पराकाष्ठा उजागर करते हैं और सौन्दर्य-बोध के अनूठेपन को प्रस्तुत करते हैं बल्कि वे अतीत के ऐसे सांस्कृतिक आविष्कार को भी सामने रखते हैं जो किन्हीं ख़ास भौगोलिक-सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सामने आया होगा। पिथौरागढ़ की हिलजात्रा, नीती का चैतोला, लाता का बिखौत, जौनसार की घ्वॉई तथा अलकनन्दा घाटी की देवयात्रा, समुद्र मन्थन या 'रामायण' के हिस्सों की नाट्य प्रस्तुति जैसी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में विभिन्न क्षेत्रों में मुखौटों का निर्माण और उपयोग होता है। ईश्वर, बुढ़देवा या लखियाभूत आदि जैसे अनेक पात्र मुखौटों के कारण ही एक विशिष्ट नाटकीयता को जन्म देते हैं। इसीलिए ये सामाजिक स्मृति तथा अभिनय में आज भी बने हुए हैं।[49]

उत्तराखण्ड में बिखरी हुई लोक ऐतिहासिक सामग्री का भी संकलन तथा विश्लेषण होना है। यह कहना ज़्यादा उचित होगा कि यह सामग्री पश्चिमी नेपाल, किन्नौर तथा शिमला ज़िले, ङारी खोरसम (पश्चिमी तिब्बत) तथा रुहेलखण्ड तक फैली है और लोक गाथाओं, लोक गीतों, प्रेम कथाओं, किंवदन्तियों तथा कहावतों आदि में बिखरी है। इस मौखिक परम्परा का एक हिस्सा तो हम खो चुके हैं लेकिन एक हिस्सा अभी भी बचा है। उसका समय पर संकलन होना आवश्यक है। छलनियों के इस्तेमाल के बाद यह सामग्री इतिहास के कतिपय ख़ाली हिस्सों को भरने में मदद दे सकती है।

लोक साहित्य का जो विधिवत् अध्ययन मिनायेव[50] तथा गंगादत्त उप्रेती ने शुरु किया था,[51] आज वह ओकले तथा गैरोला, नित्यानन्द मिश्र[52] आदि के बाद बहुत आगे निकल गया है।[53] दूसरी ओर स्वयं यह परम्परा हमारे अपने समाज से लुप्त होनी शुरु हो चुकी है। संकलन करने और संकलित सामग्री का विश्लेषण करने से इतिहास की समझ को विकसित होने का मौक़ा मिलेगा।

लोक साहित्य के विभिन्न रूपों—जैसे विभिन्न जागर; रमौल, बाइस भाई बफ़ौल, कफ़ु चौहान, भीमा कठैत, कल्याण बिष्ट या संग्राम सिंह कारकी जैसे भड़ौ (वीरगाथायें), राजुला मालूशाही जैसा प्रेम काव्य; कृषि गीत, पशुचारकों के गीत, बाल गीत, लोकोक्तियाँ और इनकी शैलियों जैसे न्योली, भगनौल, चाँचरी, छपेली, ऋतुरैण, जोड़या पाण्डव, पाण्डव नृत्य, रम्माण, तान्दी, रासो, तथा छोलिया जैसे नृत्य आदि में जो मानव अभिव्यक्तियाँ प्रकट हुई हैं या हो रही हैं, उसके विश्लेषण से इतिहास के वे सूत्र मिल सकते हैं, जिनसे इतिहास के अब तक रिक्त रहे स्थानों को भरा जा सकता है।

विभिन्न लोकवाद्यों के स्त्रोत ढूँढ़ने के साथ यह भी समझना ज़रूरी है कि बहुत-सी लोक अभिव्यक्तियाँ गीत-संगीत तथा नृत्य का रूप एक साथ लिए हैं। अतः लोकवाद्यों के विस्तृत अध्ययन के साथ गीत-संगीत, लोकवाद्यों तथा नृत्यों के अन्तःसम्बन्धों को समझने की कोशिश उस आगम को शायद खोजने में कामयाब हो सके, जहाँ से ये सभी अभिव्यक्तियाँ रूप ले सकी होंगी।

अत्यन्त पुराने ढोल, हुड़का, बाँसुरी, बिणई, तुरी, भंकारे के साथ मशकबीन तथा हारमोनियम[54] को देखना सिर्फ़ सांस्कृतिक नहीं बल्कि व्यापक समाजशास्त्रीय पड़ताल की ज़रूरत उजागर करता है।

राजशाहियाँ और सामन्तवाद

उत्तराखण्ड के मानवशास्त्रीय तथा पुरातात्विक परिदृश्य के बाद यहाँ का वंशानुगत इतिहास सामने आता है। यह स्वाभाविक था कि जो मानव समुदाय यहाँ आये और स्थापित हुए, उन्होंने ही प्रारम्भिक शासन यहाँ शुरु किये होंगे। हिमालय के विभिन्न हिस्से सामान्यतया इतिहास के ज़्यादा कालखण्डों में स्वतन्त्र और स्वायत्त बने रहे। कुछेक बार कुछ हिस्सों में तिब्बत, मध्येशिया, म्याँमार और उत्तरी भारत के राज्यों/साम्राज्यों का विस्तार भी पहुँचा, लेकिन उसे निरन्तर कायम रखना सम्भव नहीं हुआ। इस तरह क्षेत्रीय स्वतन्त्रता तथा स्वायत्तता औपनिवेशिक शासन से पहले यहाँ लगातार बनी रही।

ईसा पूर्व की चौथी-पाँचवीं सदियों से ईसा पश्चात् की तीसरी सदी तक उत्तर पश्चिमी भारत में सक्रिय कुणिन्द वंश का विस्तार मध्य-पश्चिमी उत्तराखण्ड के कुछ हिस्सों में हुआ था। मौर्य तथा गुप्तकाल में हिमालयी राज्यों के साथ इन साम्राज्यों का सम्पर्क था। अशोक के शिलालेख का कालसी में होना इसका सबल प्रमाण है। निश्चय ही यह स्थान उत्तरापथ का महत्त्वपूर्ण नगर रहा होगा और हिमालयी व्यापार की मण्डी भी। गुप्तकाल के उत्तरार्द्ध में स्थानीय राजवंशों का उदय हुआ। पौरव, बर्मन तथा कत्यूरी आदि उस समय के उत्तराखण्डी वंश हैं। बर्मन नामक वंश तो कश्मीर, उत्तराखण्ड तथा असम में साथ-साथ नज़र आते हैं। इनकी किसी तरह की सम्बद्धता को खोजा जाना है।

1.7 भीष्मचन्द (सन् 1555-60) का अल्मोड़ा ताम्रपत्र (सौजन्य : चन्द्र सिंह चौहान)

कत्यूरी उत्तराखण्ड का महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक राजवंश है। उत्तराखण्ड के कत्यूरी शासकों की डोटी तथा अस्कोट वंशावलियों में शक शालिवाहन को वंश का मूल पुरुष माने जाने के कारण भी कुछ इतिहासविदों ने यहाँ शक राज्य की सम्भावना व्यक्त की है।[55] पँवार वंश की विलियम्स तथा अल्मोड़ा वाली दो वंशावलियों में आठवें तथा ग्यारहवें शासकों के रूप में शालिवाहन का नाम आता है। खसों तथा शकों को एक ही मानव समूह के दो प्रवाह भी बताया गया है, लेकिन दोनों के हिमालय प्रदेश में आने के बीच कुछ शताब्दियों का अन्तराल है। राहुल तथा डबराल ने मलारी, बैजनाथ तथा द्वाराहाट की समाधियों को शकों के साथ जोड़ा है।[56]

हिमालय के अन्य हिस्सों की तरह उत्तराखण्ड में भी लगातार बहुराजकता बनी रही और सन् 637-39 में हिमालय के पाद प्रदेश में यात्रा करने वाला चीनी यात्री श्वेन त्साङ इसका सन्दर्भ देता है।[57] वह बताता है कि हिमालय के पाद प्रदेश के राज्यों का अन्तर्वर्ती राज्यों से सतत सम्पर्क था। वह स्त्री-राज्य का सन्दर्भ भी देता है। हिमालयी राज्यों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता के उदाहरण मिलते हैं। बहुराजकता के दौर में सूर्य और चन्द्रवंशी शासकों का सिलसिला चला। कश्मीर के इतिहास से सम्बन्धित 'राजतरंगिणी' जैसी रचना हिमालय के अन्य क्षेत्रों के बारे में उपलब्ध होती है।[58] राजपूत काल, सल्तनत और मुग़लकाल में हिमालयी राज्य क़ायम रहे तथा सुल्तानों/मुगश्लों से उनके सम्बन्ध भी बने रहे।[59] तराई के जंगल मुग़ल साम्राज्य तथा उत्तराखण्ड में मौजूद राज्यों के बीच के बफर बने रहे, जहाँ दोनों ओर से शिकार हेतु निरन्तर आगमन होता रहा।

विभिन्न भारतीय साम्राज्यों और हिमालयी राज्यों का सामाजिक-सांस्कृतिक और व्यापारिक रिश्ता निरन्तर कायम रहा। उत्तरापथ में ही उत्तराखण्ड था। उत्तराखण्ड में अनेक बार तिब्बत की ओर से हुए हमलों का सन्दर्भ मिलता है तो सल्तनत तथा मुग़लकाल के बाद रुहेलों तथा सिक्खों के द्वारा हुए हमलों का विवरण भी, लेकिन एक संक्षिप्त अवरोध के अलावा इनसे स्थानीय राज्य-व्यवस्थाएँ ध्वस्त नहीं हो सकीं।

इस दौर में उत्तराखण्ड के द्वार भौगोलिक कठिनाइयों के कारण आंशिक ही खुल सके थे। पूर्व मध्यकाल में जो दर्जनों राजवंश उत्तराखण्ड में शासन कर रहे थे, उन्हीं में से मध्यकाल के उन वंशों का उदय हुआ, जिन्होंने छोटे-छोटे गढ़पतियों को जीत कर पँवार तथा चन्द राज्यों को विकसित किया।[60] हर दौर की बहुराजकता को कुछ महत्त्वाकांक्षी शासकों ने कम किया और बड़े राज्यों की स्थापना की, जो कुछ सदियों तक चलते रहे। जहाँ अजयपाल ने 52 या इससे भी अधिक गढ़पतियों को जीत कर पँवार वंश को स्थायित्व तथा विस्तार दिया, वहीं कल्याण चन्द तथा रुद्रचन्द आदि ने कुमाऊँ के अनेक गढ़पतियों को जीत कर, जिनमें बम, मल्ल तथा मणकोटी शासक भी थे, चन्द वंश को।[61]

पँवारों ने चाँदपुरगढ़ी से देवलगढ़ होकर अन्ततः अपनी राजधानी श्रीनगर लाने का निर्णय लिया तो राजबुंगा (चम्पावतगढ़ी) से विकसित चन्द राज्य ने अन्ततः अल्मोड़ा को अपनी राजधानी बनाया और कुछ समय बाद रुद्रपुर की स्थापना भी हुई।[62] सन् 1815 में अँग्रेज़ी शासन के आने के बाद जब बृहत् गढ़वाल को विभाजित कर टिहरी रियासत बनायी गयी तो भागीरथी-भिलंगना के तट पर टिहरी नगर की स्थापना हुई, जो 189 साल बाद 2004 में टिहरी बाँध की झील में डूब गया, पर अकेला नहीं भागीरथी-भिलंगना घाटियों की आत्मनिर्भर बसासतों और खेती की बेहतरीन ज़मीन के साथ।

यह भी जानना रोचक होगा कि आईन-ए-अकबरी में 'कुमाऊँ' तथा 'श्रीनगर' जैसे सम्बोधन क्रमशः 3 तथा 1 बार ही आये हैं।[63] इसी तरह तब 'गढ़वाल' सम्बोधन नज़र नहीं आता है। उस दौर के एक नक़्शे में अवश्य 'राजा रुद्रो' लिखा मिलता है, जो रुद्रचन्द के क्षेत्र को बताता है।[64] पँवार शासक सन् 1804 तक सम्पूर्ण गढ़वाल पर और 1815 से 1949 तक टिहरी रियासत पर राज्य करते रहे, जबकि चन्द शासन का अवसान गोरखा आक्रमण के समय सन् 1790 में ही हो गया था। सामन्ती दौर के शासकों के तिथि क्रम, वंशावलियों, पदवियों या उनके सल्तनत या मुग़लकालीन शासकों से सम्बन्धों पर अनेक भ्रम अभी भी प्रचलित हैं।[65]

औरंगज़ेब के सत्तासीन होते समय दारा शिकोह का बेटा सुलेमान शिकोह भागकर आत्मरक्षा के लिए श्रीनगर (गढ़वाल) आया था, जिस कारण

औरंगज़ेब की सेना दून क्षेत्र तक आ गयी, लेकिन सुलेमान को औरंगज़ेब को सौंप दिये जाने के बाद मुग़ल हमला समाप्त हो गया। यह याद रखने की बात है कि सुलेमान शिकोह के साथ आये कलाकारों में गढ़वाली क़लम के चित्रकार, कवि, इतिहासकार मौलाराम के पूर्वज भी शामिल थे।[66] मुग़लकाल में तीर्थयात्रा तथा आर्थिक आदान-प्रदान हिमालयी तथा मैदानी समाजों के बीच निरन्तर होता रहा। इसी समय मुग़ल क्षेत्र से होकर जैसुइट पादरी उत्तराखण्ड सहित हिमालय के कुछ हिस्सों और तिब्बत तक जाने का सिलसिला प्रारम्भ कर सके।

दरअसल, अन्तिम मध्यकालीन हिमालयी सामन्ती राज्य-व्यवस्थाओं में गोरखा शासक सबसे सशक्त होकर उभरे। काठमाण्डू के उत्तर-पश्चिम में स्थित गोरखा ज़िले से विकसित यह राज्य आधी सदी के भीतर नेपाल के 'चौबीसी' तथा 'बाईसी' कुल 46 छोटे-छोटे शासकों को एक बड़े राज्य के भीतर लाने में कामयाब रहा। सन् 1790 में तीस्ता से काली नदी तक फैला यह राज्य नेपाल युद्ध (1814-16) के समय फिर इसी स्थिति में आने से पहले पश्चिम में कुलू यानी ब्यास नदी तक फैल गया था, जब इसके अन्तर्गत वर्तमान उत्तराखण्ड तथा हिमाचल भी आ गये थे।

उत्तराखण्ड में औपनिवेशिक सत्ता की टकराहट गोरखों से हुई थी। डोगरा तथा अहोम शासकों के मुक़ाबले गोरखा राज्य बड़ा था तथा एक प्रकार से इसने मध्य हिमालयी साम्राज्य का रूप ले लिया था। यही दौर हिमालय क्षेत्र के अनेक हिस्सों का अखिल भारतीय औपनिवेशिक राज्य-व्यवस्था के अन्तर्गत आने का था। इस दौर में उत्तराखण्ड में पुरानी सामन्तशाही और नयी औपनिवेशिक सत्ता साथ-साथ शासन करती रही यानी कम्पनी शासन के आगमन के साथ टिहरी रियासत का जन्म भी हुआ। इन दो व्यवस्थाओं में लगातार समझौता हुआ और तनाव और टकराव के मौक़े नहीं आये।[67]

प्राकृतिक संसाधन तथा आर्थिक विविधता

उत्तराखण्ड किसी और पर्वतमाला की तरह विविध संसाधनों का घर है, जो शिकारी-संग्राहक अवस्था के दौर से मनुष्य द्वारा इस्तेमाल किये जाते रहे हैं।[68] सामाजिक-आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में इन संसाधनों का इस्तेमाल होता रहा है और इसी से उत्तराखण्ड का आर्थिक तथा पारिस्थितिक पक्ष भी जुड़ा रहा है।

उत्तराखण्ड के प्राकृतिक संसाधनों को ज़मीन, जंगल, जल, जन-जानवर तथा वन्यता (wilderness) में विभाजित किया जा सकता है। ज़मीन आधारभूत संसाधन है। इसमें खेती और चरागाह के क्षेत्र तो सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही, खनिज तथा धातु भण्डार ही नहीं, जंगल, ग्लेशियर, नदियाँ

और तालाब भी शामिल हैं। खेतिहर ज़मीन को मनुष्य और उसकी व्यवस्थाएँ व्यक्तिगत मिल्कियत तक ले आयी हैं जबकि ज़मीन के शेष प्रकार राज-व्यवस्था ने अपने अधिकार में ले लिए हैं। औपनिवेशिक काल में यह प्रक्रिया बढ़ती चली गयी और फिर यह स्वतन्त्र भारत में भी सिमट नहीं सकी।[69]

पानी अगला संसाधन है, जो पेयजल, सिंचाई, घराट, बिजली और 'पैकेज्ड' पानी के उत्पादन से जुड़ा है और उत्तराखण्ड से प्रवाहित हो समन्दर में समा जाने तक हर क्षेत्र में स्वयं के साथ मिट्टी और उर्वरता बाँटता रहा है।[70] पानी की उपलब्धता या कम उपलब्धता से ही हिमालय में अरुणाचल और लद्दाख जैसे अन्तर सम्भव हुए हैं। स्वयं उत्तराखण्ड के भीतर इस तरह का अन्तर देखा जा सकता है। उत्तराखण्ड की एक आर्थिक सच्चाई यह भी है कि छोटी नदियों के किनारे ही बड़ी और सम्पन्न खेती विकसित हुई और जो आज भी कायम है।

जंगल उत्तराखण्ड की पानी-बर्फ़ जितनी ही और अनेक अर्थों में इनसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण पहचान है। जंगलों से शिकार और संग्रह, पशुपालन और कुटीर उद्योग, खेती-व्यापार और वैद्यकी जुड़ी है। ये जंगल ही हैं जो मिट्टी बनाते हैं और उसे रोकते हैं। जो मिट्टी बह भी जाती है, वह उर्वरता लेकर मैदानों में जाती रही है। जंगलों के साथ गीत-संगीत तथा यात्राएँ जुड़ी हैं। उपकरण और कलाएँ जुड़ी हैं। यहाँ की कुछ ख़ास गीत शैलियाँ, जैसे उत्तराखण्ड की 'न्यौली', बिना जंगल के अनुकूलन के नहीं गायी जा सकती है। जंगलों में ही जड़ी-बूटी तथा पशु-पक्षी हैं यानी जंगल जैव विविधता के स्वरूप को निर्धारित करते हैं।[71] लोक ज्ञान और लोक तकनीकों का सबसे गहरा सम्बन्ध जंगल के उत्पादों से ही है। हिमालय में जैव विविधता के अनेक रूप हैं। उत्तराखण्ड में न तो लद्दाख की तरह मात्र 05 प्रतिशत से कम भू-भाग पर हरियाली है और न अरुणाचल की तरह 80 प्रतिशत से अधिक हिस्से में जंगल हैं।[72] उत्तराखण्ड के कुछ इलाक़े जैव विविधता की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न और महत्त्व के हैं। दो विश्व प्राकृतिक विरासत क्षेत्र (नन्दादेवी अभयारण्य तथा फूलों की घाटी) यहाँ मौजूद हैं तो जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क तथा हर की दून जैसे क्षेत्र भी। फूलों की दर्जनों अन्य घाटियाँ भी यहाँ हैं जो भ्यूंढार जितनी ही सुन्दर और विविध प्रजातियों से श्री सम्पन्न हैं।

जैव विविधता के सन्दर्भ में यह बताया जा चुका है कि हिमालय का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल का मात्र 0.3 प्रतिशत है, लेकिन यहाँ विश्व जैव विविधता का 10 प्रतिशत मौजूद है।[73] भारत के दस जैव-भौगोलिक क्षेत्रों में से दो पूरे तथा तीसरा आंशिक रूप से उत्तराखण्ड में है।[74] जंगलों से स्थानीय तथा अन्य समाजों को भोजन, चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, जड़ी-बूटी, खाद, कपड़ा, रेशा, कस्तूरी, पंख और खालें आदि मिलती रही हैं। क्लोरो-लोरो

कार्बन्स द्वारा ओजोन पर्त में निरन्तर बढ़ाये जा रहे छेद, जलवायु परिवर्तन और विश्व तापमान बढ़ने के दौर में हिमालय के जंगल कार्बन पृथक्करण (कार्बन सिक्वेसट्रेसन) के भी सबसे बड़े आधार हैं।